

अंक : १३०

अप्रैल - जून २०१५

# कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका



## कहानियां


सुरभि बेहेरा • रूबी मोहंती • डॉ. दीप्ति पटनायक  
डॉ. भगवती प्रसाद द्विवेदी • डॉ. शैलजा 'श्यामा'

आमने-सामने • सागर-सीपी  
जय प्रकाश त्रिपाठी • यज्ञ शर्मा

१५ रुपये

अप्रैल-जून २०१७  
(१९७९ से प्रकाशित)

# कथाबिंब

<p><b>प्रधान संपादक</b> डॉ. माधव सक्सेना "अरविंद" <b>संपादिका</b> मंजुश्री <b>संपादन सहयोग</b> जय प्रकाश त्रिपाठी अश्विनी कुमार मिश्र अशोक वशिष्ठ हम्माद अहमद खान</p>	<p><b>कहानियां</b> अंतिम इच्छा - सुरभि बेहेरा ७ गुलाबी लिफाफा - रूबी मोहंती १३ धीरा मौसी - डॉ. दीप्ति पटनायक १९ बाट जोहते हुए - डॉ. भगवती प्रसाद द्विवेदी २५ मानवाधिकार - डॉ. शैलजा "श्यामा" २९</p> <p><b>लघुकथाएं</b> उसकी पढ़ाई / कुणाल शर्मा "अनजान" १७ एक अकेला / भवानी सिंह ३६ क्रीमत / अरविंद कुमार "मुकुल" ४८</p> <p><b>गज़लें / गीत / कविताएं</b> गज़लें / मंजुला उपाध्याय "मंजुल" १८ तुक्तक / चंद्रमोहन प्रधान २८ गीत / जय प्रकाश त्रिपाठी ३३ गज़ल / जय प्रकाश त्रिपाठी ३५ गज़ल / डॉ. गोपाल "राजगोपाल" ३६ कविता / सुरेश "सौरभ" ४७ गीत / मदन देवड़ा ४७</p> <p><b>स्तंभ</b> "कुछ कही, कुछ अनकही" २ लेटर बॉक्स ४ "आमने-सामने" / जय प्रकाश त्रिपाठी ३१ "सागर-सीपी" / यज्ञ शर्मा ३७ "बाइस्कोप" (सविता बजाज) / अनुराधा तिवारी ४३ पुस्तक-समीक्षा ४५</p>
<p>●सदस्यता शुल्क● आजीवन : ५०० रु., त्रैवार्षिक : १२५ रु., वार्षिक : ५० रु., (वार्षिक शुल्क ५ रु. के डाक टिकटों के रूप में भी स्वीकार्य है) कृपया सदस्यता शुल्क मनीऑर्डर, डिमांड ड्राफ्ट द्वारा केवल "कथाबिंब" के नाम ही भेजें.</p> <p>●रचनाएं व शुल्क भेजने का पता● ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड, देवनार, मुंबई-४०० ०८८. फोन : २५५१ ५५४१, ९८१९१६२६४८</p> <p>e-mail : kathabimb@yahoo.com www.kathabimb.com</p>	<p>●"कथाबिंब" अब फेसबुक पर भी ●  facebook.com/kathabimb आवरण पर नामित रचनाकारों से निवेदन है कि वे कृपया अपने नाम को "टैग" करें.</p>
<p>● न्यूयॉर्क संपर्क ● नरेश मित्रल (M) 845-304-2414 नमित सक्सेना (M) 347-514-4222</p> <p>● शिकागो संपर्क ● तूलिका सक्सेना (M) 224-875-0738</p>	<p>आवरण चित्र : डॉ. अरविंद फ्रैमिंगो पक्षी (सफ़ारी पार्क, सैन डियेगो, अमेरिका, जून '१५). "कथाबिंब" मुंबई की "संस्कृति संरक्षण संस्था" के सौजन्य से प्रकाशित होती है.</p>
<p>एक प्रति का मूल्य : १५ रु. कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु १५ रु. के डाक टिकट अवश्य भेजें. (सामान्य अंक : ४०-४४ पृष्ठ)</p>	

## कुछ कही, कुछ अनकही

यह संयोग ही है कि पिछले दो सालों की तरह इस बार भी गर्मियां अमेरिका में गुजरीं। इस तरह करीब दो-ढाई महीने मुंबई से बाहर रहने पर सबसे अधिक व्यवधान “कथाबिंब” के प्रकाशन में आता है। सामान्यतया हमारी कोशिश रहती है कि प्रत्येक तिमाही के तीसरे माह के अंत तक पत्रिका पाठकों तक पहुंच जाये। इस वर्ष, जून-जुलाई के विदेश प्रवास के दौरान भी लगातार ई-मेल के माध्यम से प्रेस से संपर्क बना रहा और इस अंक के प्रकाशन में अतिरिक्त विलंब नहीं हुआ। संयुक्तांक निकालना संभवतः एक आसान विकल्प होता किंतु उन तमाम लेखकों और पाठकों के प्रति यह अन्याय होता जो हर अंक का बेसवरी से इंतज़ार करते रहते हैं। जुलाई अंत तक पाठक कथाबिंब की वेबसाइट पर इस अंक को देख-पढ़ पायेंगे और हमारी कोशिश रहेगी कि अगस्त के प्रथम सप्ताह में ग्राहकों/सदस्यों तक भी प्रतियां पहुंच जायें।

प्रवास के दौरान रोज़ ही टी. वी. न्यूज़ और दैनिक अख़बारों से भारत के सभी समाचार मिल जाते थे। संभवतः बहुत सारे मित्र लेखकों को श्रीमती गायत्री कमलेश्वर और मेरे रिश्ते के बारे में जानकारी है। करीब पिछले दो-तीन सालों से वे श्री दुष्यंत कुमार के सुपुत्र, अपने दामाद आलोक त्यागी के साथ मुंबई में रह रही थीं। ५ जुलाई २०१५ की रात में जब भारत में ६ जुलाई की सुबह हुई ही थी, एक फ़ोन आया। समाचार मिला कि बहन गायत्री जी का अचानक निधन होगया। हम सभी सकते में आ गये। उनकी तबियत खराब है यह जानकारी हमें थी। एक सप्ताह पहले उनसे फ़ोन पर बात हुई तब वे दिल्ली में थीं। ऐसा क्रतई नहीं लग रहा था कि वे हमसे इतनी जल्दी विदा ले लेंगी। दिल हमेशा कचोटता रहेगा कि ऐसे दुर्दिन के समय हम पति-पत्नी विदेश में उनसे बहुत दूर थे।

अब इस अंक की कहानियों पर छुट-पुट -- अंक की पहली कहानी की लेखिका की मूल भाषा ओड़िया है। पिछले अंक में पाठक “आमने-सामने” स्तंभ में सुरभि बेहेरा से रूबरू हो चुके हैं। आप काफ़ी समय से हिंदी और ओड़िया दोनों भाषाओं में साहित्य-सृजन करती रही हैं। “अंतिम इच्छा” एक कमिटमेंट की कहानी है जो एक मित्र दूसरे से करता है। मित्र की अंतिम इच्छा के रूप में उदय बिना किसी उहापोह के, न ही केवल मित्र की पत्नी का हाथ थामता है बल्कि मित्र के पुत्र को भी एक पिता का प्यार देता है। दूसरी कहानी की लेखिका रूबी मोहंती भी ओड़िया भाषी हैं। अपनी कहानी “गुलाबी लिफ़ाफ़ा” में बहुत ही सीधे-सादे ट्रीटमेंट के माध्यम से वे यह उजागर करती हैं कि भारतीय गृहणियां परिवार को खुशहाल बनाने में स्वयं को ख़पा देती हैं, यहां तक कि बहुधा अपने स्वास्थ्य की ओर भी ध्यान नहीं देतीं। यह संयोग ही है कि अंक की तीसरी लेखिका डॉ. दीप्ति पटनायक भी ओड़िया भाषी हैं। इस तरह यह अंक शायद “ओड़िया-अंक” भी कहा जा सकता है। “धीरा मौसी” कहानी का अनुवाद मधुसूदन साहा ने मूल ओड़िया से किया है। साहा जी से फ़ोन पर बात होने पर सुखद आश्चर्य हुआ कि आप सुरभि बेहेरा के पिताश्री हैं और “कथाबिंब” से काफ़ी अरसे से परिचित हैं। वैसे तो धीरा मौसी का नाम सुधीरा था लेकिन वे धीर गंभीर नहीं थीं। चार बच्चों की मां ने पति के निधन के बाद केवल अपने परिवार को ही नहीं संभाला बल्कि हर जान-पहचान वाले की हमेशा मदद करती रहीं। किंतु उनका ऐसा व्यवहार परिवार के सदस्यों को कभी रास नहीं आया। भारतीय परिप्रेक्ष्य में विधवाएं किन परिस्थितियों में जीती हैं यह सर्वविदित है। अपनी कहानी “बाट जोहते हुए” में डॉ. भगवती प्रसाद द्विवेदी ने भारतीय समाज की ऐसी स्त्रियों का चित्रण किया है जो मानती हैं कि एक बार वरण करने के बाद सात जन्म तक पति से बंधन नहीं छूटता। किसी कारण से यदि इस जन्म में पति का साथ नहीं मिल पाया तो अगले जन्म की बाट जोहते हुए ज़िंदगी गुजारना स्वीकार कर लेती हैं, चाहे विवशता वश ही क्यों न! अंक की अंतिम कहानी “मानवाधिकार” सर्वथा एक नयी लेखिका डॉ. शैलजा “श्यामा” की रचना है। बहुत ही सूक्ष्मता से लेखिका ने ऐसे पत्रकारों के चेहरों से नकाब उतारा है जो पत्रकारिता को “व्यापार” से अधिक कुछ नहीं समझते। हर छोटी-बड़ी दुर्घटना उनके लिए मात्र एक “अवसर” होता है।

स्वतंत्रता के बाद कई बार ऐसे अवसर आये जब भारतवर्ष संपन्नता और समृद्धि की राह पर तेज़ी से आगे बढ़ सकता था किंतु कतिपय विपरीत कारणों से ऐसा संभव नहीं हो सका। पं. नेहरू के निधन के पश्चात श्री लाल बहादुर शास्त्री के रूप में देश ने सर्वथा अलग विचारों वाला प्रधानमंत्री पाया। “जय जवान, जय किसान” नारे ने भारतीयों में एक नयी चेतना का संचार किया। शास्त्री जी के आव्हान पर देश हित में सहर्ष अनेक लोगों ने सप्ताह में एक दिन भोजन करना त्याग दिया। “हरित क्रांति” का सूत्रपात भी तब ही हुआ था। ताशकंद में उनकी मृत्यु कैसे हुई इस पर आज तक पर्दा पड़ा हुआ है। शास्त्री जी के बाद देश की बागडोर श्रीमती इंदिरा गांधी ने संभाली। १९७१ में पाकिस्तान की लड़ाई में भारत ने विजय प्राप्त की और बंगलादेश बनने में मदद की। अटल बिहारी बाजपेयी जी ने इंदिरा गांधी की तुलना दुर्गा जी से की थी किंतु शीघ्र ही जनता का कॉन्ग्रेस से मोहभंग हो गया। तत्पश्चात श्री जयप्रकाश जी के नेतृत्व में सारा विपक्ष एकजुट हुआ। साथ

ही चुनाव-प्रचार में गलत तरीकों के इस्तेमाल का इलाहाबाद उच्च न्यायालय में चल रहा एक मुकदमा इंदिरा गांधी हार गयीं। २५ जून १९७५ को इमरजेन्सी लगी। तबसे यदि इंदिरा गांधी की हत्या और दिल्ली के दंगों के बाद सत्ता में आयी राजीव गांधी की सरकार को छोड़ दें तो बहुमत के अभाव में ४० साल तक सरकारें बनती-बिगड़ती रहीं। यहां इस सबका उल्लेख करने का तात्पर्य मात्र इतना ही कि जब तक हम इतिहास पर दृष्टिपात नहीं करेंगे, अतीत की खामियों को अच्छी तरह नहीं समझेंगे, अपने वर्तमान में अपेक्षित बदलाव नहीं ला पायेंगे और यदि कुछ नया हो रहा है तो उसका अहसास भी हमें नहीं हो पायेगा। तमाम विवादों से घिरे होने के बावजूद व विरोधियों द्वारा नकारात्मक प्रचार के बाद भी भारतीय जनता ने पिछले वर्ष आम चुनावों में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के प्रचारक तथा “मौत के सौदागर” नरेंद्र मोदी को एक अभूतपूर्व बहुमत से जिताया। पिछले ३० वर्षों में ऐसा पहली बार हुआ कि किसी एक दल या गठबंधन को इस प्रकार का जनादेश मिला हो। कॉन्ग्रेस व अन्य कुछ दो-तीन विरोधी दलों को छोड़ कर अनेक दल दस की संख्या भी पार नहीं कर सके। आज का वोटर जिसमें ७० प्रतिशत युवा हैं “कम्युलिज़्म” और “सेकुलरिज़्म” के झमेले में नहीं पड़ना चाहता। संचार क्रांति के इस युग में सारा विश्व उसकी हथेली में एक स्मार्ट फ़ोन आ जाने के कारण सिमटकर रह गया है। वह भारत में भी वे सभी सुविधाएं चाहता है जो संसार के किसी भी विकसित देश में मौजूद हैं। इस वास्तविकता को सभी राजनीतिक दलों को समझना होगा और अपनी नीतियों में “कोर्स करेक्शन” करना होगा। बीसवीं सदी के राजनीतिक समीकरणों और जोड़-तोड़ का आधार लेकर आप इक्कीसवीं सदी की लड़ाई नहीं जीत सकते।

आज देश एक बहुत ही सकारात्मक दौर से गुजर रहा है। नरेंद्र मोदी की सरकार एक सोचे-समझे रोडमैप पर चल रही है। पहले वर्ष में प्रधानमंत्री द्वारा की अनेक विदेश यात्राओं से पूरे विश्व में भारत की साख बढी है। न जाने कितने देश आज भारत में परियोजनाएं लगाने और धन निवेश करने के लिए तत्पर हैं। देश के किसी भी भाग में २४ घंटे बिजली उपलब्ध हो इस हेतु कारगर योजनाएं शुरू हुई हैं। महामार्गों के निर्माण में तेज़ी आयी है। इन्हें विश्व स्तर का बनाने का प्लान तैयार है लाखों स्थानीय लोगों को इससे रोज़गार मिलेगा। हमारा उद्देश्य मोदी सरकार की उपलब्धियां गिनाना या प्रधानमंत्री की विरुदावली गाना नहीं है। यह माना कि साहित्यकार का स्वर विरोधी होना चाहिए किंतु महज विरोध के लिए विरोध करना भी किसी का ध्येय नहीं होना चाहिए। हिंदी को राष्ट्रभाषा का दर्जा दिलाने के लिए असंख्य लोगों ने अपना जीवन अर्पण कर दिया। हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए अनेक समितियां बनीं। सभी सरकारी विभागों में हिंदी विभाग है। प्रतिवर्ष १४ सितंबर “हिंदी-दिवस” जोर-शोर से मनाया जाता है। लेकिन उसके बाद केवल खानापूरी! गुजराती भाषी होने के बावजूद नरेंद्र मोदी अपने संभाषणों में, देश हो या विदेश, बहुत ही सहज-सरल हिंदी का ही प्रयोग करते हैं। उनके इस एक क़दम ने स्वमेव हिंदी को राष्ट्रभाषा का दर्जा प्रदान कर दिया है साथ ही हिंदी को अपेक्षित गरिमा मिली है। अभी २१ जून को भारत समेत १७७ देशों में अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस मनाया गया। २७ सितंबर २०१४ को संयुक्त राष्ट्र की असेंबली में अपने संबोधन ने श्री मोदी ने प्रति वर्ष इस तरह के आयोजन का सुझाव दिया था, जिसे असेंबली ने ११ दिसंबर को सर्वसम्मति से पारित किया। भौगोलिक दृष्टि से २१ जून का विशिष्ट महत्त्व होता है। उत्तरी गोलार्ध में यह सबसे बड़ा दिन होता है और पृथ्वी दक्षिणायन का रुख करती है। दिल्ली में ८४ देशों के प्रतिनिधियों के साथ राजपथ पर ३५,९८५ लोगों ने एक साथ ३५ मिनट तक योगाभ्यास किया। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी सबसे आगे प्रथम पंक्ति में थे और अन्य प्रतिभागियों की तरह योगाभ्यास कर रहे थे। इस कार्यक्रम को हमने अमरीका में देखा। अमेरिका में भी अनेक शहरों में योगाभ्यास के कार्यक्रम आयोजित किये गये।

वर्षों तक राजनीतिक उठा-पटक के चलते देश की अनेक समस्याओं की अनदेखी होती रही। वर्तमान सरकार की अपनी प्राथमिकताएं हो सकती हैं। आज इंटरनेट के माध्यम से आम नागरिक अपने सुझाव सरकार को भेज सकते हैं। ●

अंत में, चलते-चलते! अमेरिका में सारा यातायात हवाई जहाज से होता है या सड़कों द्वारा। इस प्रवास में मुझे भी कार ड्राइव करने का काफ़ी अवसर मिला। सड़कों का पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण का एक विशाल नेटवर्क है, लेकिन अनुपात में सड़क दुर्घटनाएं नगण्य होती हैं। इसका कारण वाहन-चालन नियमों का सख्ती से पालन किया जाना है। यदि कोई व्यक्ति लाइसेंस लेना चाहता है तो कार्यालय उसे नियमों की एक पुस्तिका देता है जिसके आधार पर एक लिखित परीक्षा देनी होती है। उसमें पास होने के बाद ड्राइविंग टेस्ट जो काफ़ी मुश्किल होता है, पास होने पर ही लाइसेंस मिलता है। सड़कों पर जगह-जगह “स्टॉप” और गति सीमा के बोर्ड लगे होते हैं। एक अन्य मूल-मंत्र है “राइट ऑफ़ वे.” यानी, **चौराहे पर जो वाहन पहले आया वह पहले जायेगा**। कोई भी लेन तोड़ कर दूसरी गाड़ी को ओवरटेक नहीं कर सकता। किसी से ज़रा ग़लती हुई नहीं कि “कॉप” मौजूद। यदि हम सड़क दुर्घटनाएं कम करना चाहते हैं तो हमें भी नियम पालन की दिशा में सख्ती लानी होगी।

अरविंद



## लेटर-बॉक्स



► 'कथाबिंब' का जनवरी-मार्च २०१५ अंक मिला. पढ़ने की शुरुआत किसी कहानी, कविता, ग़ज़ल से नहीं की बल्कि कुशेश्वर जी के समालोचनात्मक कई पृष्ठों के पत्र से जो 'कथाबिंब' के अक्टूबर-दिसंबर अंक पर केंद्रित है. यह धैर्यपूर्ण पाठ और तार्किक आलोचना का एक अच्छा और ज़रूरी उपक्रम है. आप असहमतियों के स्वर को भी जगह देते हैं यह अच्छी बात है.

जहां तक जनवरी-मार्च २०१५ के अंक की बात है इसकी कहानियों से इस बार कुशेश्वर जी को कोई शिकायत नहीं होगी, ऐसा मैं समझता हूँ. संतोष परिहार की कहानी 'अंतिम पड़ाव पर' यथार्थवादी और पठनीय है जो सामाजिक विसंगतियों को मार्मिकता से रखती है. पीयूष द्विवेदी की कहानी 'पाखंडी' आज के दौर का एक प्रेम आख्यान है जिसमें आंदोलन और उद्यत यौवन प्रेम का अफ़सोसनाक अंत है. घर और परिवार की संवेदनाओं और संघर्षों की व्यथा-कथा कहती मदन मोहन प्रसाद की कहानी 'लीक', विक्रम सिंह की कहानी 'पॉवर, पैसा और परिवार' और रविशंकर की कहानी 'जीवन खेल तमाशा' भी पठनीय हैं. रविशंकर सिंह की कहानी में पिता जो चार जमात पढ़े हैं उनका डिप्लोमा इन फ़ार्मेसी में डिग्री प्राप्त करना तथ्यात्मक त्रुटि है या नहीं इस पर मैं कन्फ़र्म नहीं हूँ. कुशेश्वर जी बतायेंगे. अशोक अंजुम की ग़ज़ल सशक्त रही.

- केशव शरण

एम, २/५६४, सिकरौल, वाराणसी-२२१००२.

► 'कथाबिंब' का जनवरी-मार्च '१५ अंक मिला. कहानियों के चयन में आप एवं मंजुश्री जी का चयन-कौशल साफ़ झलकता है. प्रसन्नता इस बात की है कि 'कथाबिंब' केवल नामचीन कथाकारों की कहानियों को ही अपने पृष्ठों पर जगह नहीं देती, अपितु नये और अल्प ज्ञात कथाकारों को भी समुचित अवसर देने की चिंता करती है. इसी का सुपरिणाम है कि पत्रिका के हर अंक की कहानियों में ताज़गी और नयापन देखने को मिलता है. यह सच है कि अधिकतर साहित्यिक पत्रिकाओं में स्थापित लेखकों की रचनाओं का इतना वर्चस्व रहता है कि नयों को मौक़ा ही नहीं मिलता. कृपया ऐसी ही नीति बनाये रखें.

समाज के अंतिम छोर पर खड़े समुदाय की व्यथा कथा को आधार बनाकर कहानी 'अंतिम पड़ाव पर' लिखी गयी है. कथावस्तु निःसंदेह अच्छी है और मन को स्पर्श करती है. कथाकार ने कहानी में चमत्कार पैदा करने के लिए पार्थिव देह के साथ आयी सामग्री को एक व्यक्ति द्वारा चिता में जला दिये जाने का जिक्र किया है, जिनमें मृतक के साथ आये कपड़े भी शामिल थे. हिंदू मान्यता के अनुसार शव के साथ न्यूनतम कपड़े, जो शरीर को ढके रहते हैं, चिता में जलाये जाते हैं. उनके अलावा कपड़े आदि जलाना वर्जित

रहता है. आश्चर्य है कि एक व्यक्ति ने कपाल क्रिया के बाद ढेर सारे कपड़े चिता में जला दिये, लेकिन उसका किसी ने तनिक भी विरोध नहीं किया. क्या हिंदू मान्यताएं इतनी कमज़ोर हैं? यदि कहानी में उस व्यक्ति की नासमझी/हेकड़ी का विरोध भी दर्शाया जाता, तो कहानी अधिक सशक्त बनती. चमत्कार के लिए यथार्थ की अनदेखी ठीक नहीं है.

- युगेश शर्मा

११ सौम्या एन्क्लेव एक्सटेंशन, सियाराम कॉलोनी, चुनाभट्टी, भोपाल-४६२०१६.

► 'कथाबिंब' का जनवरी-मार्च २०१५ अंक प्राप्त हुआ. सबसे पहले तो आपको 'कमलेश्वर स्मृति कथा पुरस्कार-२०१४' के लिए बधाई एवं साधुवाद. निश्चित ही सर्वश्रेष्ठ कहानी, श्रेष्ठ कहानी और उत्तम कहानी का चयन विभिन्न प्रकार के खूबसूरत फूलों में से उसकी खुशबू का अर्क निकालने जैसा था जो आपने कर दिखाया. दरअसल, इस बेहद श्रमसाध्य एवं कठिन काम के पीछे संपादक मंडल विशेषकर अरविंद जी एवं मंजुश्री जी की 'कथाबिंब' के प्रति सतत लगन व समर्पण की भावना रही है.

किसी भी पत्रिका को जनग्राह्य बनाने में संपादक की जन-सापेक्ष सोच और नज़रिया होना बहुत ज़रूरी है. अपने



समय, समाज और सच्चाई को पकड़ने का बुद्धि कौशल अगर संपादक के पास नहीं है तो वह वक्रत की नब्ज को पहचान नहीं पायेगा. इसी संदर्भ में 'मत-मतांतर' में कुशेश्वर जी ने बिलकुल ठीक ही लिखा है... 'देखा जाये तो साहित्यिक रचनात्मक दृष्टि लाने के लिए रचनाकार और संपादक दोनों को मेहनत, मशक्कत, धैर्य और चिंताधारा की तलवारों की धार पर से गुजरना पड़ता है, जिनका इन दिनों काफ़ी अभाव है. हिंदी साहित्य के लिए यह एक दुःखद समय है.'

आपकी संपादकीय क्षमता और परिपक्वता की वजह से ही अंक की पहली कहानी 'अंतिम पड़ाव पर' (संतोष परिहार) को ही आना चाहिए था. मुर्दा लाशों के बीच अपनी जिजीविषा तलाश करती बच्ची छबीली का यह दर्द देश के उन लाखों बच्चों का दर्द बन चुका है जो मुर्दाघरों-श्मशानों और नदी-तलाबों के किनारे दो जून की रोटी के लिए अपने पेट की अंतड़ियों के ताप से जल रहे हैं. लेखक संतोष परिहार इन शब्दों में कहानी के दर्द को उभारने में सफल कहे जा सकते हैं कि, '...कहते हैं कि आदमी भूत बनकर सताता है. मगर छबीली कितने समय से मुर्दा का सामान उठा रही थी, मजाल है कि किसी मुर्दे ने उसे सताया हो. उसकी आत्मा तो आज ज़िंदा लोगों ने दुखायी थी'. संपादक की समय सापेक्ष दृष्टि की तरह ही ऐसी यथार्थवादी कहानियों का स्वागत व्यापक पाठक वर्ग में भी होना चाहिए.

अंक की कुल पांच कहानियों में विक्रम सिंह की विदेश की नायिका मंजु और 'पॉवर, पैसा और परिवार' की नायिका मंजु, विदेश की नायिका और अपने कमाऊ पति से क्रुद में कहीं ऊंची साबित होती है, जब वह यह कहती है कि, 'मैं आस्ट्रेलिया नहीं जाऊंगी. आप तो बूढ़े मां-बाप को छोड़कर चले गये. यदि मैं भी चली गयी तो इन्हें कौन देखेगा?' परिवार के प्रति समर्पण ही उसे अन्य औरतों से अलग करता है. वास्तव में किचन में रात के १० बजे तक बर्तन मांजने की आवाज़ अपनेपन और श्रद्धा के साथ जिस घर में गूंजती है उसी घर में स्वर्ग भी बसता है. ईश्वर, आज के इस स्वार्थी और आपाधापी के युग में ऐसी बहू हर घर में दे. मदन मोहन प्रसाद की 'लीक', रविशंकर सिंह की

'जीवन खेल-तमाशा' बस ठीक-ठाक ही लगीं. अंक की सबसे स्तरहीन और बकवास कहानी में पीयूष द्विवेदी जी की 'पाखंडी' को रखा जा सकता है. पर यह बात समझ से परे है कि ऐसी बेकार और बेसिर-पैर की कहानी को दूसरे पायदान पर क्यों रखा गया?

लघुकथाओं में श्याम कुमार राई की 'हमारा अच्छा बेटा', सुनील गज्जाणी की 'बारिश का बोझ' अच्छी बन पड़ी हैं, जबकि कविताओं और ग़ज़लों में राम कुमार पटेल 'यार,' अशोक अंजुम की ग़ज़लें और दयाशंकर सुबोध, डॉक्टर प्रभा मुजुमदार, प्रोफेसर मुत्तुंजय उपाध्याय की कविताएं ध्यानाकर्षण करती हैं.

हमेशा की तरह 'कुछ कही, कुछ अनकही' में, अरविंद जी ने समसामयिक मुद्दों पर समीक्षात्मक टिप्पणियां की हैं जो बिलकुल सटीक हैं. 'आईने में उतरते हुए प्रतिबिंब' (आमने-सामने) में यदि आप लेखकों की उपलब्धियों की बजाये उनके संघर्ष को रेखांकित करें तो यह कॉलम सारिका के 'गर्दिश के दिन' की तरह लेखकों और पाठकों को बहुत कुछ दे सकता है. 'सागर-सीपी' में डॉक्टर श्याम निर्मोही से डॉक्टर राजेश हजेला की विशेष बातचीत हमेशा की तरह सारगर्भित है. 'बाइस्कोप' में सविता बजाज ने इब्राहिम अल्काज़ी के व्यक्तित्व के कुछ छुपे रहस्यों को उजागर करके जिज्ञासु पाठकों पर उपकार ही किया है.

'कथाबिंब' का सबसे सार्थक पहलू यह है कि इसमें 'पुस्तक समीक्षा' के तहत वर्तमान साहित्य पर समसामयिक विषयों की समीक्षा विभिन्न विद्वान समालोचकों से कराकर उसे पाठकों के सम्मुख रखते हैं. 'शिखर एवं जलेस' के तत्वाधान में फ़र्रूखाबाद में अरविंद जी की मौजूदगी दरअसल देश भर में फैले 'कथाबिंब' के सुधी पाठकों में एक उपलब्धि की तरह है.

- विक्रम जनबंधु,

संपादक - प्रेस पुलिस लहर (पाक्षिक),  
क्वार्टर १७ए, -सड़क एवेन्यू, बी-सेक्टर-१,  
भिलाईनगर-४९०००१(छ.ग.)

► 'कथाबिंब' का जनवरी-मार्च अंक मिला. हर बार की तरह अंक संग्रहणीय रहा. कहानियां सब अच्छी

लगीं. खासकर रविशंकर सिंह की 'जीवन खेल तमाशा' पढ़ते-पढ़ते आंखें भर आयीं. कहानी बहुत सुंदर बन पड़ी है.

श्याम कुमार राई की लघुकथा 'हमारा अच्छा बेटा' भी बहुत कुछ कह गयी. आजकल के बेटों ने खुद पर प्रश्नचिन्ह खड़ा कर दिया है. बहुएं ठीक नहीं आ रही हैं. (अपवादों को छोड़ दें तो) और वे इन बेटों का भी दिमाग खराब कर रही हैं. मां-बाप चक्की में पिस रहे हैं. अपनी संतानों को त्याग वे कहाँ जायें?

आपका संपादकीय! २१वीं सदी में कोई अवतरित हो तो देश-दुनिया का हाल सुधरे. चाहे जितने भी गांधी पैदा हो जायें. पैगंबर, ईसा मसीह आ जायें देश नहीं सुधरने वाला. अगर सुधरना ही होता तो 'एक' ही भारी पड़ता.

- माला वर्मा,

हाजीनगर, प. बंगाल-७४३१३५

► 'कथाबिंब' का १२९वां अंक मिला है. आभार. आपने अपने बहुत दिनों बाद बोलने वाले मित्र का पत्र, ज्यों का त्यों छापकर संपादकीय हिम्मत और सौजन्य दिखाया है. पहले इसकी दाद लें. मित्र ने भी बिना मुलाहिजे के बेबाक ढंग से अपनी बात लिख दी है. दोनों पक्ष प्रशंस्य! दिल्ली चुनाव पर आपने टिप्पणी की है. सुना था कि जनता माफ़ नहीं करती, किंतु केजरीवाल को किया है. अब उन्हें स्वयं को सिद्ध करना होगा. संपादकीय हमेशा की तरह क्ररीब-क्ररीब सभी जीवंत मुद्दों को छू गया है. गांधी याद आ ही गया न? पत्रों में कविवर चांद मुंगेरी ने गज़लों के प्रति आपका ध्यान चाहा है. यह ज़रूरी है. श्री कुशेश्वरजी ने भी एक गज़ल की चीर फाड़ करके यही संकेत किया है.

- चंद्रसेन विराट

१२१, वैकुंठधाम कॉलोनी,

आनंद बाजार के पीछे, इंदौर-४५२०१८.

► 'कथाबिंब' का जनवरी-मार्च प्राप्त हुआ. इसमें चिर परिचित चेहरे हैं. भाई अशोक अंजुम, सुनील, प्रबोधजी आदि. आपका संपादकीय विचारोत्तेजक है और ऐसा लगता है जैसे वो मेरे विचार हैं.

इस अंक की कविताएं 'पाखी', 'ज्ञानोदय' जैसी नहीं हैं. रविशंकर सिंह की कहानी 'जीवन खेल तमाशा' पृष्ठ २६ पर... 'ना कजरे की धार, ना मोतियों का हार' एक पैरे में अस्सी के दशक का गीत है तो अगले पैरे में 'वे गुलामी के दिन थे...' आज़ादी के पूर्व का समय है. कथाकार ने

समय-काल का ध्यान ही न रखा. 'पाखंडी' कहानी में कथाकार ने नायक को मारने में बड़ी जल्दबाजी दिखाई है. संतोष परिहार की कहानी विचारों पर आधारित है. अन्य भाषाओं में इससे बेहतर कथानक पर कहानियां आयी हैं. हालांकि कुल मिलाकर कहानी ठीक है. इसी तरह 'लीक', 'पाखंडी', 'पॉवर, पैसा और परिवार' अपनी जगह. इस संक्रमण काल की कहानियों में या तो 'पाखी', 'हंस', 'ज्ञानोदय' की तरह पूरी तरह बदलाव की लंबी कहानियां जिनमें बीच-बीच में टूटन भी हो लोग क्यों पसंद करते हैं. मुझे आज तक समझ में नहीं आया.

- जितेंद्र निर्मोही

बी-४२२, आर. के. पुरम, कोटा (राज.)

► 'कथाबिंब' का जनवरी-मार्च '१५ पाकर अतीव प्रसन्नता हुई. सभी कहानियां रमाती हैं. जीवन की विषमता, विरूपता, कुरूपता से साक्षात्कार कराती हैं तो आस्था, आशा और स्वप्नों का संसार भी रचाती हैं. आप यह ध्यान रखते हैं कि कभी ऐसी कहानी न दी जाये जो विखंडन, विरूपण और भेद का पाठ पढ़ाती हो. ऐसी कहानी हो, जो जीवन के जद्दो-जहद से आंख मिलाना सिखाये. आशा, विश्वास और प्रेम का तराना गाये. 'आशा के प्रदीप को जलाये चलो धर्मराज' (दिनकर : कुरुक्षेत्र) की तरह.

कविताएं, गज़लें भी सकारात्मक और मानवीय पक्षधरता की जीवंत अभिव्यक्ति हैं भाई सुबोध 'ओ खेवनहार' में खेवनहार की निर्बाध सेवा भावना पर विहंसते हैं जो बिना किसी प्रतिदान के सेवा में लगा है :

'बचाता रहा डूबने से/डूबने वालों को मंझधार से/ बिना किसी दक्षिणा के, पुरस्कार के' (पृ.१८).

सभी रचनाएं प्रेरक, प्राणवंत हैं, सभी रचनाकार साधुवाद के सच्चे अधिकारी हैं.

- प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय

१/२१, वृंदावन, मनोरम नगर,

लूबी सर्कुलर रोड, धनबाद-८२६००२

'कथाबिंब' का यह अंक आपको कैसा लगा कृपया अपनी प्रतिक्रिया हमें भेजें और साथ ही लेखकों को भी. हमें आपके पत्रों का बेसब्री से इंतज़ार रहता है.

- संपादक

## अंतिम इच्छा

✍ सुरभि बेहेरा

रात देर तक जागने के कारण सुबह सुरभि की नींद भी देर से टूटी. रोज़ की तरह उसने दीवार घड़ी पर नज़र डाली तो चौंककर उठ बैठी. सात बज चुके थे. उसने चादर समेटते हुए कहा — 'इतनी देर हो गयी! आपने मुझे जगाया क्यों नहीं?'

'मैंने तुम्हें दो बार पुकारा. तुम गहरी नींद में थीं, इसीलिए शायद तुम्हारी आंखें नहीं खुलीं. टेबल घड़ी की घनघनाहट भी तो तुम्हें नहीं उठा सकी. लगता है रात तुम भी देर से सोयी थीं.'

'कल रात रेणु के साथ फ़ोन पर बात होने के बाद मैं देर तक उसी के बारे में सोचती रही. पलकों से नींद न जाने कहां ग़ायब हो गयी, पता ही नहीं चला? तरह-तरह की बातें आंखों के सामने चलचित्र की भांति एक पर एक आती रहीं. सोचते-सोचते कब पलकें लगीं, मैं भी नहीं जानती.' सुरभि ने अपने मन का खुलासा किया.

छुट्टी का दिन था, इसलिए दोनों बच्चे निक्कू और श्रुति भी आराम से सोये हुए थे. उन दोनों के जगने से पहले वह घर का सारा काम निपटा लेना चाहती थी, इसलिए जल्दी-जल्दी दो कप चाय बनाकर डायनिंग टेबल पर रखते हुए बोली — 'आइए, पहले चाय पी लीजिए, वर्ना ठंडी हो जायेगी.'

मेरे कुछ कहने से पहले फ़ोन की घंटी घनघना उठी. 'मैं देखती हूँ. आप चाय पीजिए.' — इतना कहते हुए सुरभि ने दौड़कर रिसीवर उठा लिया.

फ़ोन पर बात करने के बाद वह लगभग हांफती हुई आकर मेरे सामने बैठ गयी. मैंने चाय का घूंट लेते हुए पूछा — 'किसका फ़ोन था?'

'रेणु का ही था.'

'क्या कह रही थी?'

'क्या कहेगी! बस, वही बात बार-बार दोहरा रही है.'

'कौन-सी बात?'

'कह रही थी, इस बार कोई बहाना नहीं चलेगा. अगर इस बार तुम नहीं आयी तो हमेशा के लिए तेरी-मेरी कुट्टी. और हां, अकेले मत आना, समझी!'

'तुमने क्या कहा?'

'मैं क्या कहती! रात से ही तो कह रही हूँ कि हम दोनों ही आ रहे हैं. बच्चों को दादा-दादी के पास छोड़ जायेंगे. बस दो दिन की तो बात है. स्कूल भी बंद रहेगा. उससे कहा भी कि अगर इसी तरह बार-बार फ़ोन करती रहोगी तो सुबह की बस भी नहीं पकड़ पाऊंगी, लेकिन आप तो जानते हैं कि जब वह फ़ोन करती है तो उसे वक्रत का ख़्याल ही नहीं रहता. आखिर मैंने ही रिसीवर रख दिया.' — सुरभि फ़ोन पर अपनी सहेली से हुई सारी बातें एक-एक कर मुझे बताती रही.

मैं चाय पीकर बाथरूम चला गया. तैयार होकर जब ऑटो लेने निकल रहा था, सुरभि की आवाज़ सुनाई पड़ी — 'ज़रा जल्दी आइएगा. आप तो जहां जाते हैं, वहीं अटक जाते हैं. कोई न कोई दोस्त रास्ते में मिल जायेगा और आप उससे बातचीत करने में यह भी भूल जायेंगे कि बस कितने बजे खुलती है. बस, जाइए और तुरंत आइए. मैं भी जल्दी ही तैयार हो रही हूँ.'

मैं जब ऑटो लेकर आया, सुरभि बेडरूम में आदमक़द आईने के सामने खड़ी-खड़ी साड़ी का पल्लू ठीक कर रही थी. मेरे बुलाने के पहले ही वह सूटकेस पकड़े हड़बड़ाते हुए बाहर निकल आयी. कॉलोनी से बस स्टैंड पहुंचने में दस मिनट से ज़्यादा नहीं लगता है. ऑटो से उतरते ही भुवनेश्वर की बस मिल गयी. हम लोग जल्दी-जल्दी बस के अंदर घुसे. जान में जान आयी....

घर पहुंचते ही रेणु दरवाज़े पर इंतज़ार करती हुई मिली. हल्के रंग की आसमानी साड़ी में वह पहले से भी अधिक सुंदर लग रही थी. शायद उदय के प्यार ने ही उसे इतने बड़े सदमे से उबार कर यह नयी रौनक दी थी.





१९, फरवरी, १९६६, राउरकेला, ओड़िशा;  
एम. ए. (हिंदी) – संबलपुर विश्वविद्यालय, ओड़िशा.

: प्रकाशित :

ओड़िया की चर्चित कहानियां (अनूदित) २००७; खिलती पंखुड़ियां (मौलिक) २००७, बबूल की छांव (अनूदित) २००९; दिशाहीन नदी (अनूदित), सपने : जो पूरे न हो सके (मौलिक); नटखट चिट्ठू (बाल कथा संग्रह); नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया द्वारा नेहरू बाल पुस्तकालय के तहत नटखट चिट्ठू बाल कहानी प्रकाशनाधीन; मौलिक कथा संग्रह खिलती पंखुड़ियां का मराठी भाषा में अनुवाद (उमलत्या कळ्या) २०१२. इसके अतिरिक्त २००३ से अब तक हिंदी की विभिन्न स्तरीय पत्रिकाओं में जैसे - कथाबिंब, इंद्रप्रस्थ भारती, नवनीत, पालिका समाचार, भाषा, संस्कृति, मधुमती, नया ज्ञानोदय, भाषा परिचय, नई धारा, परती पलार, समग्र वृष्टि, तुलसीप्रभा, युगीन, शोध दिशा, विविधा, वागर्थ, मेरी सहेली, अहल्या, सेतु, सरस्वती सुमन, वैश्वसुधा, हिंदुस्तान, जन्मवी, पिनाक, कथाक्रम, इत्याद भाषा भारती, हरिगंधा, समकालीन भारतीय

साहित्य, भारी पानी यंत्र, सांवली, साहित्य-भारती, युगस्यंदन, प्रगतिवार्ता, साहित्य परिवार, आर्य संदेश, आजकल, कथा समय आदि में समीक्षा, लेख, साक्षात्कार मौलिक तथा अनूदित कहानियां प्रकाशित.

इसके अलावा चंपक, स्नेह, बालवाटिका, बालभारती, अभिनव बाल पत्रिका आदि कई बच्चों की पत्रिकाओं में बाल कहानियां प्रकाशित.

: प्राप्त पुरस्कार :

राष्ट्रीय राजभाषा पीठ, इलाहाबाद द्वारा भारती का विवरण भूषण सम्मान (२००६), ओड़िया और हिंदी भाषा के मध्य सेतु निर्माण हेतु संकल्प संस्थान, राउरकेला द्वारा सारस्वत संकल्प शिरोमणि सम्मान (२०११), हिंदी कहानी एवं अनुवाद के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान हेतु उक्कल मेल सम्मान (२०१२), हिंदीतर भाषा हिंदी लेखक पुरस्कार योजना के अंतर्गत मौलिक कृति खिलती पंखुड़ियां को राष्ट्रीय सम्मान वर्ष (२००९).

: अन्य साहित्यिक गतिविधियां :

हिंदी साहित्य में भाषायी वैज्ञानिकता और तकनीकी दृष्टिकोण (२००४) भिलाई संगोष्ठी में प्रतिभागी, संकल्प संस्थान, राउरकेला, ओड़िशा के विभिन्न साहित्यिक कार्यक्रमों के आयोजन में सक्रिय योगदान, भुवनेश्वर (नवंबर २०११) में आयोजित अखिल भारतीय परमाणु ऊर्जा राजभाषा सम्मेलन में प्रतिभागी. लेखक साम्मुख्य, भुवनेश्वर, ओड़िशा के विभिन्न साहित्यिक कार्यक्रमों के आयोजन में सक्रिय योगदान.

ओड़िसा एवं हिंदी भाषा अध्ययन तथा ओड़िया से हिंदी अनुवाद कार्य में विशेष रुचि.

हमें देखते ही रेणु के चेहरे पर खुशी की उजास फैल गयी. वह लपककर सुरभि से लिपट गयी जैसे दूर से आती हुई नदी को समुद्र का मुहाना मिल गया हो.

दूसरे ही क्षण मेरी ओर मुखातिब होकर बोली — ‘बच्चों को साथ ले आते तो कितना अच्छा लगता. अकेले-अकेले क्यों आ गये?’

‘अरे, अकेले कहां आया हूं. साथ में आपकी सहेली भी तो आयी है. अगर बच्चे आते तो यह उन्हीं में फंसी रहती, आपसे गप्पें हांकने का वक़्त कहां नसीब होता. जान-बूझकर ही इसने बच्चों को साथ लाने का प्रोग्राम नहीं बनाया.’ मैंने अपनी ओर से स्पष्टीकरण दिया.

‘खैर, अंदर आइए. आप लोग क्या बाहर खड़े-खड़े ही बातें करते रहेंगे?’

रेणु हम लोगों को लेकर अंदर गयी और हम दोनों के सोफ़े पर बैठने के बाद वह मेरे हाथ से सूटकेस लेकर बेडरूम की ओर मुड़ गयी.

बैठकखाने की सजावट देखकर मन प्रसन्न हो उठा. फ़र्श पर क्रीमती काश्मीरी गलीचा बिछा हुआ था. सामने की दीवार पर ललित की ऑयल पेंटिंग की बड़ी-सी तस्वीर टंगी थी. फ़ेम के चुनाव में भी रेणु की रुचि झलक रही थी. लाल गुलाब के ताज़ा फूलों की बड़ी-सी माला तस्वीर के रंगों में और अधिक निखार ला रही थी. वहीं पास में पांच ब्राह्मण बैठे हुए थे, जिनसे उदय कुछ ज़रूरी बातें करने में व्यस्त था. हमें देखते ही वह उठकर दो क्रम आगे आ गया और हाथ जोड़कर मुस्कुराते हुए बोला — ‘आइए, आप लोग अंदर के कमरे में तब तक विश्राम कीजिए. इस बीच

में इन्हें पूजन का सारा काम समझा देता हूँ.’

उदय ने हमें जिस कमरे में जाने का इशारा किया था, हम लोग उसी कमरे की ओर बढ़ गये. पीछे-पीछे लिली भी आ गयी.

लिली के दोनों बच्चे वहीं खेल रहे थे. अंदर दीवान पर बैठते ही लिली ने पूछा — ‘क्यों, बच्चों को क्यों छोड़ आये? उन्हें भी साथ ले आते तो हमारे बच्चों के साथ मिलकर खेलते रहते. इनको भी अच्छा लगता.’

सुरभि ने कहा — ‘बात बिल्कुल सही है, किंतु मेरे दोनों बच्चे बड़े बातूनी हैं. उन दोनों के प्रश्नों के उत्तर देते-देते मैं भी परेशान हो जाती हूँ. निक्कू तो ऐसे-ऐसे सवाल करता है कि मैं मुसीबत में पड़ जाती हूँ. श्रुति भी कम नहीं है. देखने में जितनी छोटी और दुबली-पतली है, उसके प्रश्न उतने ही भारी-भरकम होते हैं. यहां आती तो उसका पहला प्रश्न यही होता — ‘मम्मी! यह तस्वीर वाले अंकल कौन हैं? यदि रेणु उसके इन सवालों को सुनती तो उसका मन उदास हो जाता. इतने दिनों से जिस उदासी से वह थोड़ा बहुत उबर सकी है, उसे फिर ताज़ा करने से बचना ही हमारा उद्देश्य होना चाहिए. यही सारी बातें सोचकर मैंने बच्चों को दादा-दादी के पास छोड़ना ही बेहतर समझा.’

हम लोग आपस में बातें ही कर रहे थे कि उदय ने बैठकखाने से आवाज़ लगायी — ‘पूजन कार्य प्रारंभ होने वाला है, आप लोग सभी यहां आकर नीचे कालीन पर बैठ जाइए.’

आज ललित की दसवीं पुण्यतिथि थी. उदय हर साल उस दिन पांच ब्राह्मणों को भोजन कराता था, दान-दक्षिणा देता था. अपने-परायों को बुलाता था. मित्रों को निमंत्रित करता था. होम-जाप होने के बाद प्रसाद सेवन की व्यवस्था होती थी. उसे लगता था, ऐसा करने से ललित की आत्मा को शांति मिलती है.

हवन होने के बाद सभी आगंतुक ललित की तस्वीर के सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गये और उसकी आत्मा की शांति के लिए दो मिनट की मौन प्रार्थना करने लगे. उसके बाद ललित के बारह वर्षीय बेटे लियो ने तस्वीर को अगरबत्ती दिखलाई और हाथ जोड़कर प्रणाम किया.

मैं उसे देखकर सोचने लगा यदि उदय उस समय इस मासूम बच्चे को इतना प्यार नहीं देता तो उसे पता नहीं चलता कि पिता का प्यार कैसा होता है.

रेणु और लिली ब्राह्मणों को भोजन कराने में व्यस्त थे. सुरभि बच्चों के साथ तरह-तरह की बातें कर रही थी. उसी समय उसकी नज़र बुक सेल्फ में रखे हुए एक अलबम पर पड़ी. बच्चे एक दूसरे के पीछे जब बाहर भाग गये तो सुरभि ने वह पुराना अलबम अपने हाथों में उठा लिया. उसमें रेणु और ललित की शादी की तस्वीरें थीं. ललित दूल्हे के रूप में बड़ा ही खूबसूरत लग रहा था. सत्ताइस-अट्ठाइस साल का सुदर्शन युवक. पता नहीं भरी जवानी में उसे कौन सी बीमारी हो गयी कि विवाह के कुछ ही वर्षों बाद वह अपने छोटे-से बेटे और शांत-सुशील पत्नी को छोड़कर परलोक सिंघार गया.

ललित बालेश्वर का रहने वाला था. बड़ा ही हंसमुख स्वभाव और ज़िंदादिल इंसान था. किसी से भी दोस्ती करने में उसे ज़्यादा समय नहीं लगता. दो-चार इधर-उधर की बातें की, कुछ ठहाके पड़े और वह अजनबी उसका दोस्त हो गया. उसकी इसी ज़िंदादिली के कारण ही उसके सभी मित्र उसे बहुत चाहते थे.

हैदराबाद के सर्वे ऑफ़ इंडिया के ट्रेनिंग सेंटर में ललित की दोस्ती विक्की से हो गयी. विक्की यानी विवेक भी उसी प्रशिक्षण के लिए बलांगीर से आया था. दोनों एक ही भाषा-भाषी थे, इसीलिए उनकी दोस्ती जल्द ही पारिवारिक रिश्ते में बदल गयी. विक्की जब छुट्टियों में बलांगीर जाता तो ललित भी उसके साथ होता. विक्की के घर में सभी उसे बहुत चाहते थे. उसे विक्की की मां के हाथ के दही बड़े बहुत पसंद थे. इसलिए जब कभी विक्की ललित के आने की सूचना देता, उसकी मां खाने की तरह-तरह की चीज़ें बनाने की तैयारी पहले से ही करके रखती. ललित खाने का शौक़ीन था और विक्की की मां को खिलाने का शौक़ था. इसलिए वह उसे अपने बेटे से भी ज़्यादा मानने लगी थी.

प्रशिक्षण समाप्त होने पर जब ललित बालेश्वर जाने लगा तो विक्की को भी अपने साथ ले गया. ललित के माता-पिता विक्की को देखकर काफ़ी प्रसन्न हुए. लड़का देखने-सुनने में जितना अच्छा था, पढ़ने-लिखने में भी उतना ही तेज़ था. बातचीत करने का सलीका उसके व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता थी.

ललित की बहन लिली उस समय थर्ड इयर में पढ़ रही थी. बातचीत करने में ललित की तरह ही माहिर थी. विक्की को उसकी चटकदार मीठी-मीठी बातें बड़ी अच्छी

लगतीं. दो-चार दिनों में ही विक्की को लिली भा गयी. उसने मन ही मन तय कर लिया कि नौकरी मिलने के बाद वह लिली के लिए अपना विवाह प्रस्ताव रखेगा. उसका विश्वास था कि आंटी इस प्रस्ताव को कभी नहीं टुकरायेगी.

इधर-उधर इंटरव्यू के दौरान जब कभी ललित से उसकी मुलाकात होती, वह लिली के बारे में पूछता, आंटी के हाथों के पकवानों की प्रशंसा करता और परिवार के सभी सदस्यों के स्वास्थ्य के प्रति अपनी जिज्ञासा व्यक्त करता. ललित को विक्की की यह आत्मीयता बड़ी अच्छी लगती. वह जब घर जाकर अपनी मां से विक्की के बारे में बतलाता तो लिली के मन में जिज्ञासा की नौका भावनाओं की तरंगों पर अठखेलियां करने लगती.

यह संयोग की ही बात है कि दोनों मित्रों को भुवनेश्वर के सर्वे ऑफ़ इंडिया में सर्वेयर की नौकरी मिल गयी. दोनों ने एक ही दिन पद ग्रहण किया. उसी ऑफ़िस में उन लोगों की जान-पहचान उदय से हुई. उदय भी काफ़ी मिलनसार था, इसलिए उसे इन लोगों से मित्रता बढ़ाने में देर नहीं लगी. तीनों की शिक्षा समान थी, पद एक था, कार्यालय एक था और रुचि भी एक थी इसलिए उनकी आपस में काफ़ी बनती थी. जब भी मौक़ा मिलता था, तीनों अपने मित्रों के घर जाते थे और उनके परिवार में रहकर कुछ दिनों तक घुल-मिलकर समय बिताते थे. धीरे-धीरे उनके बीच पारिवारिक घनिष्ठता इतनी प्रगाढ़ हो गयी कि सभी सहोदर से लगने लगे.

भुवनेश्वर में काम करते समय विक्की अक्सर फ़ोन पर लिली से बातें करता था. एक दिन लिली ने उसे स्मरण दिलाया कि उसने जो प्रतिश्रुति दी थी कि नौकरी होते ही विवाह के लिए प्रस्ताव रखेगा, उसका क्या हुआ? नौकरी होकर एक साल पूरा हो गया. लेकिन प्रस्ताव नहीं आया. तब तक लिली भी बी. ए. पास कर चुकी थी.

एक दिन विक्की ने अपने दोस्त ललित को अपने मन की बात बतायी और लिली के लिए प्रस्ताव लेकर बलांगीर आने के लिए कहा. उसका कहना था कि जब तक लड़की की ओर से विवाह प्रस्ताव नहीं आयेगा उसके पिताजी पहल नहीं करेंगे.

मां से विचार-विमर्श करने के बाद ललित विवाह प्रस्ताव लेकर विक्की के घर गया. वहां उसकी मुलाकात विक्की की बहन रेणु से हुई. पहली ही मुलाकात में रेणु

उसके दिल में उतर गयी.

अपनी बहन लिली के लिए विक्की के मां-बाप से बातचीत करने के दौरान ललित को मालूम हुआ कि वे लोग रेणु के विवाह के लिए भी चिंतित हैं और सोच रहे हैं कि यदि कोई अच्छा लड़का मिल जाये तो दोनों भाई-बहन की शादी एक ही समय कर देंगे. ललित ने अकेले में विक्की से कहा — 'देखो भाई, अन्य चीज़ों की भांति हम दोनों की चिंता भी एक ही है — बहन का विवाह. मैं तुम्हारी यह चिंता दूर कर रहा हूं, तुम मेरी चिंता दूर कर दो. इसमें हर्ज़ ही क्या है?'

'हर्ज़ तो कुछ नहीं है, लेकिन मां-पिताजी से सलाह करनी होगी. अपने परायों को समझाना होगा. हमारे समाज में इस तरह के अदल-बदल वाले विवाह को लोग आज भी अच्छा नहीं मानते. फिर भी तुम आश्वस्त रहो, मैं पूरी कोशिश करूंगा.' विक्की ने अपने दोस्त को वचन देते हुए कहा.

थोड़े ही दिनों के बाद दोनों की दोस्ती रिश्ते में बदल गयी. दोनों के परिवार पुरी पहुंचे और महाप्रभु के परिसर में दोनों शादियां संपन्न हो गयीं. दोनों ओर से बड़े निकट के कुछ लोग ही आये थे. उन्होंने आशीर्वाद दिया कि नव-दंपति का पारिवारिक जीवन सुखमय हो.

उन लोगों का आशीर्वाद सचमुच फलीभूत हुआ. दोनों परिवारों में कभी कुछ नहीं हुआ. किसी को कभी किसी से शिकायत नहीं हुई, जो अक्सर ऐसे रिश्तों में हो जाती है.

दोनों दोस्तों ने एक ही कॉलोनी में किराये पर मकान लिया. प्रायः शाम को दोनों परिवारों में आना-जाना होता था. हर ज़रूरत में एक-दूसरे की मदद करना वे अपना पहला कर्तव्य मानते थे.

साल भर के बाद दोनों के घर नये मेहमान आये. विक्की को बेटी हुई, जिसका नाम उसने एली रखा और ललित को बेटा हुआ जिसे वह लियो कहकर पुकारता था. एली अपनी मां की तरह चंचल और खूबसूरत थी और लियो अपनी मां की तरह सरल व शांत.

ललित शुरू से बड़ा ही महत्वाकांक्षी था. वह अपने समय को कभी बर्बाद करना नहीं चाहता था. हमेशा कुछ न कुछ करने की योजनाएं बनाता रहता था और इसी के तहत उसने कई डिग्रियां भी प्राप्त कर लीं. अवसर को छोड़ना उसने कभी नहीं सीखा था. फलतः जैसे ही मौक़ा मिला उसने सर्वे ऑफ़ इंडिया को छोड़कर टेलिकॉम डिपार्टमेंट

ज्वाइन कर लिया. अपनी काबलियत के कारण देखते ही देखते वह अपने नये विभाग में भी सबका चहेता बन बैठा. यहां भी वह ज़्यादा दिन नहीं रहा. एक साल पूरा होते न होते स्टेट बैंक ऑफ़ इंडिया में पी. ओ. के पद पर नियुक्त हो गया. उसकी पोस्टिंग अनुगुल में हुई और वह अपने परिवार के साथ वहां चला गया. रेणु को अपने भाई और भाभी से बिछुड़ते समय बड़ा दुःख हुआ, किंतु नौकरी तो एक ऐसी ज़रूरत है कि वह जहां ले जाये आदमी को जाना ही पड़ता है.

अनुगुल में रेणु को कुछ दिनों तक बिल्कुल अच्छा नहीं लगा. बाद में धीरे-धीरे लोगों से जब जान-पहचान हो गयी, पड़ोसियों का आना-जाना शुरू हुआ तो अच्छा लगने लगा. लियो की तुतलाहट भरी प्यारी-प्यारी बातें और मीठी-मीठी ज़िद रेणु और ललित को हमेशा खुश करती रहती. अपना छोटा-सा परिवार उन्हें बड़ा रसमय लगने लगा था.

अचानक एक दिन ललित के पेट में बहुत दर्द उठा. दर्द इतना तेज़ था कि वह बिस्तर पर बेतरह छटपटाने लगा. रेणु बुरी तरह घबड़ा गयी. अनुगुल से एक बड़े डॉक्टर को बुलाया गया. डॉक्टर ने दर्द कम करने के लिए तुरंत सुई लगायी. फिर बाद में पूरी जांच की गयी किंतु जब तक इंजेक्शन और पेनकिलर दवा का असर रहता, ललित चुपचाप पड़ा रहता, कुछ देर बाद फिर उसी दर्द से बेचैन हो उठता.

रेणु ने अपने भाई विक्की को फ़ोन करके सारी बात बतायी. वह उसी दिन अनुगुल पहुंचा. ललित की हालत देखकर उसे तुरंत कटक हॉस्पिटल में भर्ती कराने का निर्णय लिया गया.

कटक के हॉस्पिटल में एक-एक कर सभी प्रकार की डॉक्टरी जांच कराने के बाद जो अंतिम रिपोर्ट आयी उसे देखते ही रेणु बेहोश होकर वहां गिर पड़ी.

विक्की ने उसे उठाया, मुंह पर पानी के छींटे मारकर उसे होश में लाया और बड़े प्यार से समझाया — 'रेणु! इस तरह घबड़ाने से कैसे होगा? यह तो अच्छा हुआ कि हम लोग ललित को तुरंत यहां ले आये. उसकी जांच हो गयी और इलाज़ भी शुरू हो गया. डॉक्टर कह रहे थे कि कैंसर का यह पहला स्टेज है, कुछ ही दिनों में सब ठीक हो जायेगा.'

'नहीं विक्की, मैं कोई खतरा मोल लेना नहीं चाहती. क्या पता डॉक्टर ने मुझे सांत्वना देने के लिए ही ऐसा कहा हो. जो भी पैसे खर्च हों, जहां भी जाना पड़े, तुम ललित

को ले चलो. मैं उसे खोना नहीं चाहती.' इतना कहते-कहते रेणु फफक-फफक कर रोने लगी थी.

विक्की ने उसे पुनः समझाना शुरू किया — 'तुम क्यों घबड़ाती हो? तुम अकेली तो नहीं हो, मैं हूँ, उदय है, घर के सारे लोगों का आशीर्वाद है, ललित को कुछ नहीं होगा. उदय को आज ही बुलाता हूँ. फिर हम लोग तीनों बैठकर आगे की कार्यवाही तय करेंगे.'

'तुम उदय को बुलाओ या और जिसे बुलाना है बुलाओ, मुझे कुछ नहीं कहना है, किंतु आज ही मुंबई के टाटा मेमोरियल हॉस्पिटल जाने की व्यवस्था करो. मुझे एक मिनट भी बर्बाद नहीं करना है.'

'ठीक है. मैं आज ही सारी व्यवस्था करता हूँ. तुम थोड़ा धैर्य रखो. इस तरह घबड़ाने से कैसे होगा? खुद को स्वस्थ रखोगी तभी तो ललित के स्वास्थ्य का ख्याल रख पाओगी.'

रेणु को थोड़ा शांत कर विक्की मुंबई जाने की व्यवस्था में जुट गया. शाम को मुंबई के लिए रवाना होने के पहले उदय भी आ गया था.

मुंबई में पुनः सभी प्रकार की डॉक्टरी जांच नये सिरे से करायी गयी. डॉक्टर ने कहा, 'कैंसर प्रिलिमिनरी स्टेज को बहुत पहले पार कर चुका है. दरअसल, बीमारी तीसरी स्टेज पर पहुंचने वाली है. कैंसर के जीवाणु पूरे शरीर में फैल गये हैं, इसलिए बेहतर होगा कि मरीज को कटक के कैंसर वार्ड में ही ले जाकर रखा जाये, ताकि सगे-संबंधियों को मरीज के पास आने-जाने में कोई विशेष परेशानी न उठानी पड़े.'

विक्की और उदय ने रेणु से कुछ नहीं बताया. डॉक्टरों से कहकर लगभग दो महीने तक मुंबई में ही इलाज़ कराता रहा. शहर के अन्य बड़े-बड़े डॉक्टरों की भी राय ली गयी. अंत में वे लोग ललित को लेकर कटक आ गये.

रेणु जैसे बिल्कुल टूट-सी गयी. उसका शरीर सूखकर आधा हो गया. चेहरा डाली के टूटे फूल-सा मुरझा गया. ललित कटक के कैंसर वार्ड में जितने दिनों तक रहा, रेणु एक उम्मीद लगाये रही. शायद महाप्रभु की कृपा से उसका संसार उजड़ने से बच जाये. लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ. ललित दिन प्रतिदिन मौत की ओर बढ़ता गया. शरीर पीला पड़ गया, हाथ-पांव बेजान-से हो गये और नाभि के नीचे वाले हिस्से में जानलेवा दर्द होने लगा. उसकी यह छटपटाहट

देखकर सभी लोग भगवान से प्रार्थना करने लगते कि यदि इसे रोगमुक्त नहीं करना है तो प्राणमुक्त कर दो प्रभु!

एक महीने तक रेणु के साथ विक्की और उदय भी ललित की सेवा में लगे रहे. उदय रात को अस्पताल में रहता, विक्की दिन भर उसकी सेवा करता. रेणु तो सुध-बुध खोकर हमेशा घर-बाहर करती रहती. कभी-कभी एकाध दिन के लिए विक्की को अपने परिवार के पास भी जाना पड़ता, किंतु उदय ने रेणु को एक पल भी अकेलेपन का अहसास नहीं होने दिया.

अंतिम सांस लेने के एक दिन पहले ललित अपने सभी रिश्तेदारों से मिलना चाहता था. उदय ने फ़ोन द्वारा सबको सूचना भेज दी थी. रिश्तेदारों से कमरा भर गया था. किंतु रेणु को लगता था, इस संसार में वह बिल्कुल अकेली हो गयी है. ललित के बिना उसके जीने का क्या अर्थ? वह बेतरह रोये जा रही थी. ललित उसकी ओर देखकर कुछ बोल नहीं पा रहा था. दोनों आंखों की कोरों से केवल आंसू ढरकते जा रहे थे. ललित ने इशारे से उदय को पास बुलाया और धीरे-धीरे कहना शुरू किया — ‘उदय, मैं तो जा रहा हूं. लियो और रेणु अब तुम्हारी ज़िम्मेदारी है. मेरी कमी इन्हें नहीं होने देना. लियो को अनाथ मत होने देना....रेणु को अपना लेना, मेरी आत्मा को शांति मिलेगी.’

इतना कहते-कहते ललित की आंखें बंद हो गयीं, जिह्वा अकड़-सी गयी. रेणु पछाड़ खाकर बेतरह रोती रही, किंतु ललित फिर कुछ नहीं बोल पाया. ...

ललित के मरने के बाद उदय का दायित्व और अधिक बढ़ गया. दोस्त की बातें उसे हर क्षण कुरेदती रहतीं. वह हमेशा रेणु को समझाता रहता. लियो को ललित की कमी का अहसास नहीं होने देता, फिर भी रेणु के लिए ललित को भुला देना संभव नहीं था. उसकी आंखों के आंसू कभी नहीं सूखते.

उदय और विक्की ने बहुत कोशिश करके कंपैशनेट ग्राउंड पर रेणु की नौकरी उसी बैंक में लगवा दी. धीरे-धीरे रेणु अपने जीवन को संयत करने लगी. लियो को पढ़ा-लिखाकर एक योग्य आदमी बनाना ही उसके जीवन का एक मात्र मकसद रह गया था. ज़िंदगी धीरे-धीरे पुनः पटरी पर आने लगी थी.

इस बीच उदय के मां-बाप उसकी शादी के लिए कई लड़कियां देख चुके थे, किंतु उदय किसी लड़की को देखने

के लिए कभी समय नहीं निकाल पा रहा था. दरअसल, वह अपने मित्र ललित की अंतिम इच्छा को जब भी स्मरण करता, उसके आगे ललित की आंखों में तैरती हुई पीड़ा, रेणु की तड़प और लियो की उदासी हाथ जोड़े खड़ी हो जाती. इसीलिए वह किसी के लिए कभी हां नहीं कर पाता. अंत में जब उसकी मां बहुत ज़िद करने लगी तो उदय ने कहा — ‘मां, तुम तो जानती हो ललित मेरा कितना घनिष्ठ मित्र था. तुम उसे बेटे की तरह मानती थीं. वह जब आखिरी सांस ले रहा था तो उसने रेणु का हाथ मेरे हाथ में पकड़ा कर कहा था, उदय! लियो को अनाथ नहीं होने देना... रेणु को अपना लेना. ...समझ में नहीं आता है, मैं क्या करूं? बुझती हुई उन आंखों में मेरे लिए जो विश्वास था, उसे मैं कैसे तोड़ दूं? तुम्ही बताओ मां, किसी की अंतिम इच्छा का अनादर कर मैं क्या सुखी जीवन बिता पाऊंगा?’

उदय की बातें सुनकर उसकी मां कुछ देर अवाक-सी खड़ी रही, कुछ भी नहीं बोल पायी. सामाजिक अड़चनों, रिश्तेदारों की कानाफूसी और अपनी बेटियों के भविष्य की चिंता करने के बाद उन्होंने बेटे से कहा — ‘बेटा, ज़िंदगी केवल भावनाओं से नहीं चलती है, विवेक और विचारों से चलती है. तुम जो कुछ कह रहे हो उसमें भावना और संवेदना दोनों की प्रबलता है, किंतु समाज भी तो कोई चीज़ है. घर-परिवार का भी तो हमें ख्याल रखना होगा. लोग क्या कहेंगे कि पति के मरने का एक साल भी नहीं हुआ और उसकी विधवा ने उसके दोस्त का हाथ पकड़ लिया ... शायद पहले से संबंध रहा होगा. ...क्या रेणु यह बदनामी बर्दाश्त कर सकेगी? पहले उससे पूछकर तो देख लो. मैं तुम्हें कुछ दिन और समय देती हूं. तुम सोचकर और रेणु से पूछकर मुझे बताओ, तभी मैं किसी और से बात करूंगी.’

उदय की मां को लगा कि रेणु कभी तैयार नहीं होगी. उदय एकाध महीने में कहीं और शादी करने के लिए राजी हो जायेगा. लेकिन जब उदय ने रेणु के समक्ष ललित की अंतिम इच्छा की संजीदगी भलीभांति रखी तो उसे लगा कि लियो जो अपने पिता के बारे में हमेशा कुछ से कुछ प्रश्न करता रहता है, उसका उत्तर एक मात्र उदय ही है. वह उदय को अपने पापा के समान ही प्यार करता है. यदि उसने उदय को अपना जीवन साथी बना लिया तो उसका लियो अनाथ होने से बच जायेगा. उसे अपने लिए नहीं तो कम से कम

(शेष पृष्ठ ४८ पर देखें)



## गुलाबी लिफाफा

✍ रुबी मोहंती

“रीना, आज शाम को बाँस के घर मेरा डिनर है. तुम खाने पर इंतज़ार नहीं करना,” सुनील ने कार की चाबियाँ संभालते हुए कहा और बाहर निकल गया.

“बस एक मिनट ठहरो अभी आयी,” बाथरूम से रीना ने ज़ोर से आवाज़ दी.

“तुम क्यों भाग कर बाथरूम से आयीं? जाओ-जाओ कपड़े ही भिगाओ. पिछले एक महीने से तुम्हें कह रहा था कि बाँस की २५वीं एनीवर्सरी है और हमें जाना है, लेकिन तुम्हें होश कहां है? तुम बौनी-रौनी के साथ ही रहना. तुमने तो अभी तक अपने कमरे पर लपेटने के लिए साड़ी भी ना निकाली होगी, फ़ेशियल करना तो दूर की बात है, “सुनील ने व्यंग्य से रीना की फैली कमर को निशाना बनाते हुए कहा और कार स्टार्ट कर दी.

“प्लीज़ ठहरो. मेरे मोटापे पर तुम शर्मिंदा क्यों होते हो? तुम्हें तो खुश होना चाहिए कि तुम्हारे दो गोल-मटोल बच्चों की मां हूं. मां बनने के बाद तो सभी औरतें मोटी हो जाती हैं,” रीना अपने मोटापे की वजह बता कर बिंदास हंसी हंस दी.

विवाह के एक साल बाद बौनी और रौनी की मां बन चुकी रीना को सुबह बच्चों को स्कूल छोड़ने के बाद खाना बनाना, नहाना, टीवी देखना और सोते-सोते नॉवल पढ़ने के सिवा कुछ सूझता नहीं था. कहीं जाना, बनना-संवरना, बालों में हिना लगाना, वाँक पर जाना जैसी कई बातें उसके जीवन में अर्थ खो चुकी थीं. बिखरे बालों से बना जूड़ा, कमर में खोंसी हुई साड़ी का पल्ला, हाथों से लेकर कोहनियों तक सूखा चिपका आटा... उसके ढीले व्यक्तित्व को देख कर कई बार सुनील उस पर खीजता लेकिन, रीना ‘अब छोड़ो भी’ कह कर अपने बचाव के बहाने ढूँढ़ लेती, लेकिन कई बार सुनील की बातें चुभती थीं.

‘सभी पति यही सोचते हैं. चौबीसों घंटों कौन बने-संवरें? क्या मैं जैसी हूँ वैसी ही अच्छी नहीं लगती? अब

दो बच्चों की मां क्या बने-संवरें.’ ... मैं जैसा भी हूँ मैं वैसा क्यों हूँ... गीत गुनगुनाती रीना सुनील को बाय करने के बाद घर का गेट बंद करने ही लगी कि तभी उसकी नज़र लेटर बॉक्स की ओर पड़ी. लेटर बॉक्स से कुछ बाहर झांक रहा था, जिसे देख कर रीना उसकी तरफ बढ़ गयी.

‘अरे वाह! कितना सुंदर लिफाफ़ा... वह भी मेरे फ़ेवरेट रंग पंक में! शायद, कोई कार्ड हो सकता है. लेकिन अभी तो किसी का बर्थ डे भी नहीं और ना ही मेरी और सुनील की एनीवर्सरी. फिर भला यह बेमौसम बरसात क्यों?’

हैरानी के साथ मुस्कारते हुए रीना ने लिफाफ़ा खोला. खत के खुलते ही गुलाब की कुछ पंखुड़ियां उसके पैरों पर बिखर गयीं. खुशबू से तर उस खत पर उसकी आंखें टिक गयीं, जिसमें लिखा था —

‘ओह माई डर्लिंग!

चलो इन पंखुड़ियों ने क़दमों को ही सही पर तुम्हें चूमा तो. कल शाम तीन साल के बाद तुम्हें अंसल प्लाज़ा में देखने का मौक़ा मिला. यक़ीन नहीं आया कि तुम वही रीना हो? और तुम्हारे साथ वे कौन थे? शायद तुम्हारे हसबैंड. मेरे कॉलेज़ के दिनों की कमसिन रीना. उफ़! उन दिनों की रीना... मैं तुम्हें देख कर अब भी ठगा-सा रह गया. कितनी प्यारी और गुदगुदी-सी लग रही थीं तुम. मन किया कि आगे बढ़कर बात करूं, तुम्हें छू कर देखूं. लेकिन... पर क्या ऐसा हो सकता है? काश, तुम अकेली होती तो...

— सिर्फ़ तुम्हारा...’

बिना नाम के इस खत को पढ़ कर रीना की चीख निकलते-निकलते रुक गयी, चेहरे पर एक साथ ढेर सारी पसीने की बूँदें उभर आयीं.

‘कौन हो सकता है, जो मुझे इतने क़रीब से देख कर चला गया? विपिन! नहीं... नहीं..., वह तो न्यूयॉर्क जा कर सेटल हो चुका है. अरुण.. अरुण तो रोड एक्सीडेंट में... फिर यह कौन है? सुनील के सिवाय कॉलेज़ के दिनों से



१९ दिसंबर १९७४ (मिदनापुर) प. बंगाल;  
एमए (हिंदी) गुवाहाटी वि.वि., एमए (मानवाधिकार),  
डिप्लोमा अनुवाद एवं पत्रकारिता.

**: प्रकाशन :**

सम-सामयिक विषयों सहित महिला स्वास्थ्य, सौंदर्य, खान-पान, महिला विमर्श के मुद्दे, एवं अन्यान्य सामाजिक विषयों पर देशभर के प्रतिष्ठित समाचारपत्र, पत्रिकाओं में पिछले १५ वर्षों में करीब २००० आलेख/भेंटवार्ता/कवर स्टोरी आदि प्रकाशित. दैनिक हिंदुस्तान, दैनिक भास्कर, स्वतंत्र वार्ता, लोकमत समाचार, सरिता, गृहशोभा, पंजाब केसरी आदि प्रमुख.

**: कहानियां एवं कविताएं :**

कथा समय, हरिगंधा, दिल्ली क्वीन, वनिता, अभिनव प्रयास, साहित्य नेस्ट, आदि में प्रकाशित. आकाशवाणी दिल्ली, हैदराबाद, नजीबाबाद से प्रसारण. पिछले १० वर्षों से मलयालम मनोरमा समूह की महिलाओं की लोकप्रिय हिंदी पत्रिका 'वनिता' में सेवारत. दो वर्षों तक जी-टीवी के हैदराबाद स्थित क्षेत्रीय न्यूज चैनल में समाचार वाचन एवं कम्पेयरिंग.

**: संप्रति :**

वरिष्ठ उपसंपादक 'वनिता' हिंदी, आंध्रा वनिता मंडली बिल्डिंग २, आज़ाद भवन लेन, निकट आई.टी.ओ.  
इंद्रप्रस्थ इस्टेट, नयी दिल्ली-११०००२

**: ईमेल :**

ruby.mohanty@gmail.com

मुझे चाहनेवालों में से तो कोई नहीं, फिर यह चिट्ठी? अगर वह मुझे पहले से जानता था, तो अब मुझ मोटी को देखकर उसे जाने क्या अच्छा लगा?

हाथ में खत लिये रीना अपने कमरे की ओर भागी. उसका सारा दिन इसी उधेड़बुन में बीत गया.

शनिवार का दिन था. कामवाली बाई मालती सारा

काम निबटा कर जा चुकी थी. बच्चे स्कूल से सीधे नेहा मौसी के घर जानेवाले थे. इसीलिए रीना निश्चिंत थी. बिस्तर पर लेट कर उसने उस खत को बार-बार पढ़ा.

'लिखाई किसकी हो सकती है? मेरी पसंद के रंग का लिफाफा भी? गुलाब की पंखुड़ियां और...' यही सोचते-सोचते उसकी आंख लग गयी. नींद टूटी, तो शाम के चार बज चुके थे.

'ओह! इस चिट्ठी को कहां छिपाऊं? साड़ियों की तह के नीचे? यहां तो सुनील भी अपने कपड़े रखते हैं... डाइनिंग रूम में रखे माइक्रोवेव के अंदर, नहीं-नहीं. यह भी ठीक नहीं. सोचते-सोचते रीना बेडरूम से डाइनिंग रूम और डाइनिंग रूम से किचन तक पहुंच गयी. हां, दाल का डिब्बा ठीक रहेगा. सुनील यहां तक तो आने से रहे,' बड़बड़ाती हुई रीना बाथरूम में घुसी.

शॉवर के नीचे नहाते-नहाते रीना के हाथ साबुन के झाग के सहारे उसके जिस्म पर फिसलने लगे. वह महसूस करने लगी कि सचमुच उसने अपने शरीर को कितना बेडौल कर लिया है. मां बनने के बाद आज उसे अपने शरीर के उतार-चढ़ाव में आया परिवर्तन पहली बार खला. कौन गुमनाम शख्स उसके शरीर के इस परिवर्तन को अचानक उसे महसूस करा गया? रीना के दिमाग में कई विचार एक साथ कौंधने लगे.

'सुंदरता क्या है? मेरे बच्चे, मेरा घर या मेरा शरीर. क्या सचमुच शरीर की धुरी के आसपास मेरा जीवन है? नहीं... नहीं... शायद सुंदरता सब कुछ तो नहीं, लेकिन बहुत कुछ है. जाने ऐसा क्या है, जो शरीर के फैलाव में ना सिमट सका?'

बीस मिनट शॉवर बाथ लेने के बाद रीना ने तौलिए की तरफ हाथ बढ़ाया और तौलिए से बदन पोंछने लगी. तौलिया अब उसके शरीर पर 'रैपराउंड' नहीं होता. एक समय था जब सुनील अपने तौलिए में रीना को अपने साथ समेट लेते थे. अब ना तो तौलिया आता है, ना सुनील में वो दीवानापन... स्किन और फ्रिगर पर कॉम्प्लीमेंट... वे दिन सपने हो गये. हो सकता है यह मेरे बेडौल शरीर के कारण हुआ हो. लेकिन शरीर का यह बदलाव तो मुझे बहुत पहले महसूस हो जाना चाहिए था... फिर भी रीना ने तय किया कि आज वह शाम की पार्टी में पिक शिफॉन पहनेगी. शाम को उसे देख कर सुनील ने मुस्कराते हुए कहा, 'अरे

वाह मैचिंग चूड़ियां भी? चलो शिफॉन की साड़ी से कई दिनों के बाद थोड़ी पतली तो दिखीं तुम! लुकिंग प्रिटी टुडे. क्या बात है पार्टी में किस पर बिजली गिराने का इरादा है?’

सुनील ने कॉम्पलीमेंट के साथ-साथ कटाक्ष जड़ दिया, जिससे रीना थोड़ी सकपकायी. कई बार मन में आया कि कुछ कहे, लेकिन हिम्मत नहीं हुई. पार्टी से पहले वह सुनील के मूड के साथ कोई रिस्क नहीं लेना चाहती थी. पार्टी में रौनक काफ़ी अच्छी थी. कई चिरपरिचित चेहरों से लॉन भरा था. रीना ‘फ्रूट पंच’ का गिलास लिये सबसे मिल-जुल रही थी, लेकिन उसका मन अब भी उसी ख़त में खोया था.

कब पार्टी ख़त्म हुई, कब सुबह हुई और कब रीना रूटीन कामों में उलझ गयी, पता ही नहीं चला. लेकिन सुनील को सुबह गेट तक छोड़ते समय ना तो बिखरे बालों से बना जूड़ा था और ना ही आटे सने हाथ थे. कार स्टार्ट कर सुनील रीना को छोड़ते हुए हंसा, “क्या बात है रीना? कल से तुम कुछ बदली-बदली लग रही हो, थोड़ी खोयी-खोयी भी. कल रात पार्टी में किसी ने कुछ कह तो नहीं दिया?”

‘हद है तुम्हारी तो... जो मुंह में आये बोल देते हो.’

सुनील के चले जाने के बाद भी वह कुछ पल टकटकी लगाये आंखों से ओझल होती कार को देखती रही. जो भी हो मुझे सुनील से बात शेअर करनी चाहिए. लेकिन पता नहीं सुनील क्या सोचेंगे? कैसे रिएक्ट करेंगे?’

बच्चों को स्कूल छोड़कर आते-आते उसकी नज़र एक बार उत्सुकतावश लेटर बॉक्स पर पड़ी और सचमुच इस बार एक और गुलाबी लिफ़ाफ़े ने रीना का स्वागत किया. आज बरामदे में लिफ़ाफ़ा खोलने की हिम्मत नहीं हुई. इस बार गुलाब की पंखुड़ियां नहीं थीं, लेकिन खुशबू से पूरा ख़त महक रहा था. ख़त में लिखे गये एक-एक शब्द पर रीना की आंखें चौड़ी होती गयीं और माथे पर बल पड़ने लगे. लिखा था —

‘जान,

कहां गयी थीं कल रात तैयार हो कर तुम?

बहुत ख़ूबसूरत लग रही थीं. मन तो किया कि पास आ कर तुम्हें बाहों में समेट लेता लेकिन... तुमने वही पुरानी अंगूठी पहनी थी पिंक स्टोन में. कितने ख़ूबसूरत हाथ... कल कई दिनों के बाद तुम्हारी चिर-परिचित फ़्लोरल परफ़्यूम

के गुदगुदे अहसास से एक बार फिर गुजरा.

— सिर्फ़ तुम्हारा....’

ख़त को पढ़ कर रीना को ज़ोरदार झटका लगा. ‘कोई ना कोई तो ज़रूर है, जो मेरे इतने करीब से कल रात गुजरा कि मेरी परफ़्यूम तक उसको... लेकिन मेरे खुरदरे हाथ उसे कैसे अच्छे लगे? सुनील तो मेरे हाथों को सांवले और खुरदरे बताते हैं. पार्टी में आये सभी पुरुषों के नाम और चेहरे रीना के जेहन में उभरते चले गये. बैचलर सत्यव्रत के बारे में भी उसका ध्यान आया, लेकिन वह तो कॉलेज के दिनों में नहीं था.

ठीक चार बजे छोटी बहन नेहा बच्चों को लेकर घर पहुंचने वाली थी. इस बीच अपने मन के साथ संघर्ष करते हुए रीना ने रूटीन के सारे काम निबटाने में मालती की मदद ली. घर पहुंचते ही बच्चे रीना को देखकर उछल पड़े.

‘अरे मम्मी, आज तो आप बहुत प्यारी लग रही हैं. आप पहले ऐसी क्यों नहीं लगती थीं?’ बच्चों के इस प्रश्न ने उसे भीतर तक झकझोर दिया था.

‘बेटा, अब से तुम्हारी मम्मी रोज़ ऐसी ही लगेगी.’ दोनों बच्चों को गले से लगाते हुए रीना बोली.

‘अच्छा रीना दीदी, मैं चलती हूं. राकेश भी आते ही होंगे. घर की चाबी मेरे पास ही है. लेकिन जाते-जाते एक बार मैं भी बोल दूं, दो दिन के अंदर वाकई आप बहुत बदली-बदली लग रही हैं. क्या बात है जीजा जी कहीं ज्यादा मेहरबान तो नहीं?’

नेहा ने अपनी बात पूरी भी नहीं की थी कि रीना झोंप गयी.

‘बस यों ही पहले की तरह सजने को जी चाहने लगा है.’

शाम को ऑफ़िस से आने के बाद सुनील ने टूर पर ग्वालियर जाने की ख़बर दी और साथ चलने का आग्रह भी किया.

‘सुनील के साथ बड़े दिनों के बाद मिला ऑउटिंग का मौक़ा हाथ से कैसे जाने दूं, लेकिन फिर से उस शख्स ने लिफ़ाफ़ा भेजा और किसी के हाथ लग गया तो... पता नहीं किस तरह की सिरदर्दी मेरे माथे पड़ गयी है.’

पशोपेश में डूबी रीना चाय की प्याली थमाते हुए सुनील से बोली, ‘तुम टूर से लौट आओ फिर मैं भी तुम्हारे साथ मॉर्निंग वॉक के लिए जाया करूंगी.’

सुनील रीना की बात पर चौंकते हुए बोला, “तुम्हारी तबीयत तो ठीक है ना.”

“सब ठीक करने के लिए ही तो वॉक पर जाया जाता है.” रीना मुस्कराते हुए बोली.

“लेकिन इतनी सब नयी मेहनत किसके लिए? तुम तो मेरे दो प्यारे-प्यारे बच्चों की मां बन चुकी हो,” कुटिल मुस्कान के साथ सुनील कंधे उचकाता हुआ बोला.

“क्यों, क्या मैं दुबली नहीं हो सकती?” रीना ने अचरज से पूछा.

“कम से कम यह मेहनत मेरे लिए तो नहीं हो सकती. यह तो मुझसे बेहतर तुम्हीं जानती होगी,” सुनील ने व्यंग्य से कहा.

सुनील के कटाक्ष से सकपकाते हुए रीना वहां से उठ गयी. वह सुनील की बातों में छिपे कटाक्ष और मजाक के बीच उलझ कर रह गयी.

बच्चों से मिली वूगली-वूगली कॉम्प्लीमेंट और सुनील का उसकी ओर वापस झुकाव उसे अपनी ओर ध्यान देने की ओर प्रेरित करने लगा. उस अज्ञानबी खत से हफ्ते भर में रीना का रूटीन पूरी तरह बदल गया. एरोबिक्स और वॉक का क्रेज फिर से लौट आया था. फ्रेशियल और फ्रैशन की इच्छा भी जाग उठी थी. रीना अब अपने पुराने फ्रेम में धीरे-धीरे आने लगी थी.

इधर, गुलाबी लिफाफों का सिलसिला जारी था. बिल्ली जैसे अपने बच्चों को छिपाने के लिए सात जगह बदलती है, रीना भी दिन में कई बार जगह बदलती. उसका रोज़ का काम बढ़ गया था. कभी दाल के डिब्बे में, कभी शू रैक में, कभी पुराने कपड़ों की तह में... कभी दिन में एक बार तो कभी सप्ताह में एक बार, हर बार खत मिलने के बाद रीना उसे उलटती-पलटती और सुराग खोजने की भरसक कोशिश करती, लेकिन रहस्य बरकरार ही रहता.

एक दिन रौनी शू रैक में अपनी पुराने पीटी शू ढूंढ़ रहा था कि रीना की नज़र रौनी पर पड़ी. शू रैक में रखे खत को देख लेने के डर से घबरा कर उसे बेवजह बहुत डांटा और एक तमाचा जड़ दिया. जब रौनी ने रो कर सुनील को मम्मी की डांटने-मारने की बात कही, तो सुनील रीना पर भड़क उठा, “तुम्हें क्या हो गया है? आजकल किस बात से खीजी रहती हो? क्या परेशानी थी, जो बच्चे पर हाथ उठाया? खबरदार फिर ऐसा किया तो? थोड़े दिनों के लिए

अपने मायके चली क्यों नहीं जातीं तुम.”

सुनील का गुस्सा देख वह रो पड़ी, लेकिन सुनील से कहने की हिम्मत नहीं जुटा पायी. धीरे-धीरे उसने महसूस किया कि खत के कारण उसकी परेशानी बढ़ रही है और उसके व्यक्तित्व पर हावी हो रही है. लेकिन उसे एक बात का आश्चर्य था कि वह अज्ञानबी व्यक्ति केवल खतों तक ही सीमित था. पर क्यों?

‘अभी तक तो यह गुमनाम चिट्ठियां ही जान सुखा रही थीं, अगर वह किसी दिन साक्षात सामने आ गया, तो क्या करूंगी? क्या सोचेंगे सुनील?’

सुनील... मेरे... बच्चे... मेरा घर, लेकिन मन के किसी कोने में रीना उस व्यक्ति से नहीं, पर अपने शरीर से प्यार ज़रूर करने लगी थी. फिर एक दिन... खत में कॉफी का न्योता था, जो इस तरह लिखा गया था —

‘जान,

तबादले के कारण मैं दिल्ली छोड़कर जा रहा हूं. जाने से पहले केवल एक बार तुमसे मिलना चाहता हूं. कल कॉफी हॉउस में ठीक ३.३० बजे ढेर सारे गुलाबी फूलों के साथ तुम्हारा इंतज़ार करूंगा. हां, प्लीज़ गुलाबी शिफॉन की साड़ी ही पहन कर आना. और अगर तुम नहीं आयीं, तो फूल तुम तक पहुंच जायेंगे. कैसे, यह मैं अभी नहीं बता सकता.

— तुम्हारा...’

खत पढ़ते ही रीना ने तुरंत सुनील के मोबाइल पर कॉल किया और घबरा कर फफक पड़ी, “सुनो तुम अभी इसी वक़्त घर आ जाओ प्लीज़. मुझे बहुत घबराहट हो रही है. मुझे बर्दाश्त नहीं हो रहा है.”

“अरे क्या हुआ? इतनी घबरायी हुई क्यों हो? बच्चे तो ठीक हैं ना! संभालो तुम अपने आपको, मैं फ़ौरन आता हूं.”

कार का हॉर्न सुनते ही रीना ने घबरा कर दरवाज़ा खोला और सुनील को देखते ही डबडबाई आंखों से बिखर पड़ी, लेकिन चाहते हुए भी कुछ ना बता पायी.

“तुम कल ३.३० बजे मुझे कॉफी हॉउस में मिलोगे. मुझे तुमसे कुछ बात करनी है.”

“अरे पगली, क्या बात है, जो तुम्हें बात करने के लिए कॉफी हॉउस बुलाने की ज़रूरत पड़ गयी.”

‘बस कह दिया ना, तुम वहां आओगे.’

रीना कुछ रिलैक्स हुई और सुनील वापस ऑफिस चला गया.

‘चलो सुनील तो साथ होंगे कल. लेकिन कल हरगिज़ पिंक शिफॉन पहन कर नहीं जाऊंगी. उसने कैसे सोच लिया कि मैं उसके लिए पहन कर आऊंगी. काली साड़ी पहनूंगी और चंडी बन कर जाऊंगी. उसकी फ़्लर्ट करने की हिम्मत कैसे हो रही है. कमबख्त एक शादीशुदा स्त्री से अफेअर चाहता है. कल मज़ा चखाऊंगी उसे, जिसके कारण मेरी नींद हराम हो रही है. सुनील को भले ही बाद में सारी कहानी की सफ़ाई देनी पड़ जाये.’

अगले दिन कॉफी हॉउस के सामने पहुंच कर रीना ने मोबाइल पर सुनील को रिंग किया, ‘हां, कहां तो तुम?’

‘अरे, तुम बैठो जा कर मैं आता हूं. ट्रैफ़िक में फंस गया हूं.’

‘हूं. जब भी मेरा कोई काम होता है, तुम इसी तरह फंस जाते हो,’ कहते हुए रीना ने गुस्से से मोबाइल ऑफ़ कर दिया. ‘मेरी तो क्रिस्मत ही फूटी है. अकेले ही सामना करूंगी जाकर. जो होगा देखा जायेगा,’ सोचते-सोचते रीना आगे बढ़ गयी.

कॉफी हॉउस में कोने की टेबल पर दूधिया रोशनी में गुलाबी फूल रखे थे और दीवार की ओर मुंह किये एक शख्स बैठा था. रीना की जिज्ञासा बढ़ती जा रही थी. टेबल के पास पहुंच कर सुनील की पीठ को पहचानने में रीना को एक मिनट भी नहीं लगा... और सचमुच सुनील को देखकर रीना की आंखें चौड़ी हो गयीं.

‘तुम यहां!’

‘ओ माई ब्लैक ब्यूटी! हां मैं यहां! तुम्हारा गुलाबी लिफ़ाफ़ा.’

‘ओह यू चीट. क्या मिला मुझे तंग करके?’ रीना ने टेबल पर रखे फूलों के गुच्छे को ले कर सुनील को मारते हुए उसके गले में अपनी बाहें डाल दीं.

‘मैंने देखा तुम्हें मेरी नसीहतों का कोई फ़र्क नहीं पड़ रहा था. इसी तरह मोटी होती रहीं, तो थाइराइड और डाइबीटिज़ के चपेट में आ जातीं. कम उम्र में बी पी भी ... तुम्हें कुछ हो जाये तो मैं जिऊंगा किसके लिए? मेरा और हमारे बच्चों का संसार तो तुम्हारी हेल्थ पर ही टिका है जानू. चलो इसी बहाने तुम्हारी कमर दो इंच पतली हो गयी ना! इसके लिए लेट्स सेलिब्रेट!’

## लघुकथा

# उसकी पढ़ाई

कुकुणाल शर्मा ‘अनजान’

सरकार की तरफ़ से जो पैसे राधा के खाते में आते थे उनसे राधा की पढ़ाई का खर्च कम पियक्कड़ बाप की दारू का खर्च ज़्यादा चलता था. इधर सरकार ने पैसे देने बंद कर दिये उधर बिरजू ने बेटी की पढ़ाई छुड़वाने की ठान ली.

‘बाबा, मुझे आगे पढ़ना है,’ राधा ने सहमते हुए कहा.

‘बावली हो गयी है क्या तू, पढ़-लिखकर क्या करेगी, अपनी मां की तरह मज़दूरी कर, कुछ पैसे कमायेगी तो मेरी बोटल का जुगाड़ भी होगा.’ कहकर बिरजू चारपाई पर लुढ़क गया.

आज जब बारहवीं कक्षा का परिणाम आया तो राधा ने सारे जिले में प्रथम स्थान प्राप्त किया. आस-पड़ोस के सभी लोग बिरजू को अखबार में छपी राधा की फ़ोटो दिखा बधाई दे रहे थे, उधर डी.सी.ऑफ़िस से राधा को इक्कीस हज़ार का नकद पुरस्कार भी मिला.

‘लो बाबा सरकार ने मुझे इक्कीस हज़ार का इनाम दिया है इससे आपकी कई बोटलों का जुगाड़ हो जायेगा...’ राधा की आवाज़ में हेमशा की भांति एक डर था.

आंखों में अश्रुधारा लिये बिरजू ने बेटी को न केवल आगे पढ़ाने अपितु शराब छोड़ने का वादा भी किया.

✉ १३७, पटेल नगर (जंडली),

अंबाला शहर-१३४००३ (हरि.)

मो.: ८०५९७८१२३४

सुनील की बातें सुन कर रीना की आंखें छलछला गयीं और मन का हर कोना प्यार से महक उठा.

✉ एफ-१/१०७ ग्राउंड फ़्लोर,

सेक्टर-११, रोहिणी,

नयी दिल्ली-११००८५

मो. : ९८७९५८३८७७



## मंजुला उपाध्याय 'मंजुल' की चार गज़लें

१.

ख्याबों से रिश्तों का राज छुपाते हैं ।  
सिर्फ तुम्हारी आहट पे खुल जाते हैं ॥  
वैसे तो इल्जाम कई हैं कांटों पर ।  
लेकिन जब चाहो दामन भर जाते हैं ॥  
दीप तले का अंधियारा बस याद रहा ।  
अक्सर उसकी लौ को हम बिसराते हैं ॥  
नींद रूठ कर आंखों से चल देती है ।  
गगन के तारे साथी बनकर आते हैं ॥  
सिर्फ परखने की चाहत में लोग कई ।  
घर तक आयी खुशियां भी ठुकराते हैं ॥  
डर कर जीना अब हमको मंजूर नहीं ।  
आओ साथी मिलकर कदम बढ़ाते हैं ॥  
उजियारा भी पलकें घायल करता है ।  
घुप्प अंधेरे जख्मों को सहलाते हैं ॥

२.

आरजू का पता दूढ़ लेगा ।  
सादगी की अदा दूढ़ लेगा ॥  
फासलों के कवल प्यार से वो ।  
जो नहीं है हुआ, दूढ़ लेगा ॥  
खुद परेशान है आंघियों से ।  
बंदगी में हवा दूढ़ लेगा ॥  
उसको मेरी जरूरत नहीं है ।  
थार कोई नया दूढ़ लेगा ॥  
खुद का दामन बचाना पड़ा तो ।  
मंजुला की खता दूढ़ लेगा ॥

३.

हवा का आज कैसा फैसला है ।  
घटा में बिजलियों का सिलसिला है ॥  
नया गम दे गया हर बार लेकिन ।  
असर गहरा हुआ जब दिल जला है ॥  
नजर आता नहीं कुछ साफ होकर ।  
अंधेरों के हवाले काफिला है ॥  
पढ़ेंगे पांव मेरे घर में उनके ।  
अमी तो शोखियों में हौसला है ॥  
बहुत बेचैन शाखें देख मौसम ।  
कहां महफूज कोई घोसला है ॥  
मजे में वह मजे में है जमाना ।  
चलो छोड़ो मुझे भी क्या हुआ है ॥

४.

चाहतों का हुआ ये असर देखिए ।  
हर कदम पे रकीबों का घर देखिए ॥  
बज्ज में कह रहे थे जिसे आफरीं ।  
जिस्त में बिजलियों की नजर देखिए ॥  
मुतमईन हो सके ना कमी उम्रमर ।  
हर खुशी में छुपा कैसा डर देखिए ॥  
हाले दिल पूछने को रुके दो घड़ी ।  
हो गया उनके दिल में बसर देखिए ॥  
चांद आया जमीं पे तो हैरत है क्यों ।  
उस चकोरी की प्यासी नजर देखिए ॥  
उनकी बातों का होता नहीं अब चर्की ।  
रोज देते हैं झूठी खबर देखिए ॥

संप्रदाय चौक, पूर्णियां (बिहार) - ८५४३०१. मो. : ९४३१८६५९७९

# धीरा मौसी

✍ डॉ. दीप्ति पटनायक

उसका नाम सुधीरा था लेकिन सभी उसे धीरा मौसी कह कर पुकारते थे. कहा जाता है जैसा नाम वैसा गुण, लेकिन धीरा मौसी पर यह कहावत पूरी तरह लागू नहीं होती. वह धैर्य एवं शांति की प्रतिमूर्ति हो, ऐसी बात नहीं थी. ज़रूरत पड़ने पर नाराज़ भी होती थी और क्रोध भी करती थी. परंतु उसके गौरवर्णीय चेहरे पर खिली हुई मुस्कान में इतनी कशिश थी और उसके कोमल मधुर वचनों में आत्मीयता की ऐसी महक थी कि लोग उसकी ओर आकर्षित हुए बग़ैर नहीं रह सकते थे. उसके स्वभाव की यह ख़ासियत थी कि जब वह गुस्सा होती थी तो अपने पति, बेटा, बेटी, बहू, नौकर, नौकरानी किसी को नहीं बरख़्शाती थी और ज़रूरत के समय जब किसी की मदद करती थी तो दिन-रात एक कर देती थी. यही कारण था कि उसके कटु वचनों से भी कोई नाराज़ नहीं होता, वरन् उसके प्रति सम्मान और आदर भाव से ही पेश आता. यह अलग बात है कि मौक़ा मिलने पर वे ही लोग धीरा मौसी को अपमानित करने से भी नहीं चूकते.

धीरा मौसी के अंदर सेवा भाव कूट-कूट कर भरा हुआ था. शायद इसीलिए वह ज़्यादा देर तक किसी से नाराज़ नहीं रह सकती थी. परिवार के लोग भी उससे ज़्यादा देर अलग कहां रह पाते थे? सबको कोई न कोई ज़रूरत पड़ ही जाती थी धीरा मौसी की. वह सबकी सेविका थी. किसी को कैसी भी ज़रूरत पड़े वह पीछे नहीं हटती. लोगों की सेवा करना उसने अपने जीवन का मक़सद बना लिया था. वह उसे अपना परम धर्म मानती थी.

धीरा मौसी पढ़ी-लिखी नहीं थी. पूरी तरह निरक्षर होने के बावजूद उसने पति की पेंशन लेने के लिए किसी तरह अपना हस्ताक्षर करना सीख लिया था. अपने अनपढ़ होने की हीन भावना उसमें बिल्कुल नहीं थी और शायद इसीलिए जिंदगी के हर मोड़ पर एक तेजस्विनी महिला की भांति निश्चिंत होकर अपने सारे कार्यों को सफलतापूर्वक

संपन्न करती थी. घर-बाहर, बाग-बगीचे से लेकर पास-पड़ोसियों के शादी-ब्याह, पर्व-त्योहार आदि सभी में प्रसन्न मन से आगे बढ़कर सहयोग करती थी. उसे किसी से भी मिलने-जुलने में कभी कोई संकोच नहीं होता था. अपने इसी अक्खड़ स्वभाव के कारण ही वह बड़े से बड़े अधिकारियों और छोटे से छोटे किरानियों के साथ बेहिचक मिलती-जुलती थी, खुलकर बातें करती थी और अपना काम करवा लेती थी. धीरा मौसी की अस्पताल के डॉक्टरों से लेकर नर्सों तक, टेलीफ़ोन विभाग के चपरासी से लेकर विभागाध्यक्ष तक, बिजली विभाग के सब-स्टेशन इंचार्ज से लेकर एक्ज़ेक्यूटिव इंजीनियर तक, परचून की दुकान से लेकर बड़ी से बड़ी साड़ी-गहने की दुकान तक अच्छी-खासी जान-पहचान थी, इसीलिए किसी का भी काम हो वह आसानी से करवा लेती थी. मौसी के निःस्वार्थ सेवाभाव के बारे में सभी लोग जानते थे और इसीलिए उसकी भावना की सभी क्रूर करते थे.

मध्य वित्तीय परिवार में पली-बढ़ी धीरा मौसी के वैसे तो चार बच्चे थे, किंतु वह अपनी जान-पहचान के सभी बच्चों को अपनी संतान की भांति ही मानती थी. खून के रिश्ते और पहचान के रिश्ते में मौसी ने कभी कोई अंतर नहीं माना. संभवतः इसीलिए टेलीफ़ोन विभाग के बड़े बाबू की बेटी की शादी में धीरा मौसी ने मंडप में कलश बैटाने से लेकर लड़की की विदाई तक की सारी ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले ली थी. सब कुछ हंसी-खुशी के माहौल में कैसे संपन्न हो गया, दास बाबू को पता भी नहीं चला. वे तो अपने परिवार के साथ अतिथियों के स्वागत-सत्कार में ही व्यस्त रह गये. उस दिन से दास बाबू का सारा परिवार धीरा मौसी की व्यवहार-कुशलता का कायल हो गया. तब से उस परिवार में किसी ने भी धीरा मौसी की कोई बात उठायी हो ऐसा कोई नहीं कह सकता. सीधे-सादे स्वभाव के दास बाबू और सदैव बीमार पड़ी रहने वाली उनकी पत्नी तथा उनके



७ जून १९४५;  
एम. एस. सी., पीएच-डी.

**: अनुभव :**

विगत चौतीस वर्षों से ओड़िशा के विभिन्न सरकारी महाविद्यालयों में अध्यापन के पश्चात रेवेन्सा महाविद्यालय, कटक से सेवा निवृत्त.

प्रकाशन : अन्यऽ आकाश, काव्य मृगया, प्रतिज्ञा, संगीत संध्या, मिठिरऽ रविवार (कहानी संग्रह); बाल एवं किशोर साहित्य : भीम वेत्कारऽ राति, पलाशपुरऽ पाताल घरऽ (उपन्यास), इतिहासऽ कहानी (कहानी संग्रह), विज्ञान साहित्य : आकस्मिक आविष्कारऽ कहाणी, विज्ञान औ' वैज्ञानिक, जीव जगतरऽ अजब कहाणी, विज्ञान विचित्रा; जीवनी : भारतऽ सादिका, एक भिन्न मणिषऽ वैरिस्टर वीरेन पटनायक. इसके अतिरिक्त बंगला, कोंकणी और अंग्रेज़ी की आठ कृतियों का ओड़िया में अनुवाद.

**: शोधकार्य :**

लगभग पिछले बीस वर्षों से शोध कार्य में सक्रिय. एम. फ़िल. एवं पीएच-डी के कई छात्र-छात्राओं का निर्देशन.

**: पुरस्कार एवं सम्मान :**

विज्ञान औ' वैज्ञानिक पुस्तक पर स्व. पूर्णचंद्र मिश्र स्मृति सम्मान, विज्ञान संबंधी आलेखों पर डॉ. गोपाल चंद्र पटनायक स्मृति पुरस्कार, स्वप्न कहानी के नाट्य रूपांतरण, 'स्वप्न पराहत' की आकाशवाणी प्रस्तुति पर प्रथम पुरस्कार.

**: संप्रति :**

पूर्व रसायन विज्ञान प्राध्यापिका, स्वतंत्र लेखन.  
संपर्क सूत्र - श्याम चंद्रिका  
(गीता हास्पिटल के नज़दीक)  
दास साही, जोबरा, कटक-७५३००३ (ओड़िशा)  
मो.: ९४३७८५००९२

कि जब दास बाबू की बेटी प्रसव के लिए मैके आयी तो धीरा मौसी ने नर्सिंग होम ले जाकर सब कुछ करवाया. ऐसे कई कारण हैं जिनके लिए दास बाबू का पूरा परिवार धीरा मौसी के प्रति पूरी तरह कृतज्ञ है.

इसका अर्थ यह नहीं कि धीरा मौसी अपने परिवार के लिए कुछ नहीं करती. वह सुबह सबसे पहले उठती है, पोते-पोतियों के लिए नाश्ता तैयार करती है, उन्हें स्कूल भेजती है, बागीचे के पेड़-पौधों में पानी डालती है और घर के कई अन्य छोटे-बड़े कामों को निपटाकर स्नान घर में घुस जाती है. नहा-धोकर पूजा-पाठ करके जब वह दास बाबू के घर के लिए निकलती तब तक बहुएं बिस्तर पर अंगड़ाइयां ले रही होतीं.

धीरा मौसी के सेवा-भाव की चर्चा दूर-दूर तक फैल गयी थी, इसलिए दूर के रिश्तेदार और रिश्तेदारों के परिचित भी बेधड़क उनके घर कोई न कोई काम लेकर आ जाते थे. मौसी के घर आने-जाने वाले लोगों की भीड़-सी लगी रहती. कभी सुदूर गांव से कोई रिश्तेदार किसी रोगी को लेकर आ जाता तो कभी कोई परिचित व्यक्ति अपनी बेटी, बेटी की देवरानी, बहू अथवा बहू की बहनों को लेकर अस्पताल में दिखलाने या डिलिवरी करवाने के लिए आ धमकते. धीरा मौसी किसी को निराश नहीं करती. दूसरों के लिए इस तरह की सहायता करने में मौसी को हार्दिक प्रसन्नता होती थी. लेकिन उनकी दोनों बहुओं को यह बिल्कुल पसंद नहीं था. सदैव सदावर्ती बने रहने का यह स्वभाव उन्हें बिल्कुल गवारा नहीं था. परंतु मौसी इसकी परवाह नहीं करती थी. वह तो बिजली विभाग के बड़े बाबू से लेकर लेडी डॉक्टर मिताली महांती, दांत के डॉक्टर साहू बाबू से लेकर पान की दुकान वाले हरिया और पास की बस्तीवाली नरिया मां से समान रूप से स्नेह-संपर्क बनाये रहती. इससे केवल बहुएं ही मौसी से नाराज़ नहीं रहतीं उनकी ब्याही हुई बेटियां भी पीठ पीछे ताने कसने में बाज़ नहीं आतीं. सबको सुना-सुना कर कहतीं — “मां को तो चुनाव में खड़ा हो जाना चाहिए. बूढ़ी नरिया की मां, उसकी बेटी रीना, उसकी बहू शांति की बात तो छोड़िए लेडीज़ टेलर मीलू तक को मां ने अपने स्नेह पाश में बांध रखा है. ये सभी लोग तो मां को ही वोट देंगे.”

बहू, बेटी या घर के दूसरे लोग चाहे जो कहें मौसी को कोई विशेष फ़र्क नहीं पड़ता था. वह अपना काम अपने ढंग से करती रहती. बड़ी बहू की छोटी बहन देखने में कोई

बूढ़े मां-बाप को हमेशा डॉक्टरों की ज़रूरत पड़ती थी. मौसी उनकी मदद के लिए हर वक़्त तैयार रहती. यहां तक

खास सुंदर नहीं थी, किंतु उसके लिए एक सुंदर वर तलाश करने का काम भी धीरा मौसी ने ही किया। छोटी बहू का भाई आज अगर अमेरिका में जाकर बस गया है तो उसका श्रेय भी मौसी को ही जाता है। उसके अपने रिश्तेदार नीलमणि काका के बेटे से छोटी बहू के भाई का काम करवाया था। वह जब अमेरिका में बस गया तो अपने बहन-बहनोई को बुलाकर अपने खर्च से उन्हें पूरा अमेरिका घुमा दिया। यह कोई कम बात तो नहीं है? हुआ तो सब मौसी के कारण। परंतु इन सब बातों को लोग याद ही कहां रखते? बहू तो बहू, अपनी छोटी बेटि क्या किसी से कम है? उसे हमेशा यह शिकायत रहती है कि उसकी अपनी मां उसके लिए कुछ नहीं करती। अब उसे कौन समझाये कि आज के युग में किसी बी. ए. पास सामान्य-सी लड़की का विवाह किसी प्रख्यात डॉक्टर के साथ करा पाना कोई हंसी-खेल तो नहीं है। बस एक संयोग की ही बात है। जान-पहचान के वकील विश्वाल बाबू की पत्नी बीमार थी। उसका इलाज डॉक्टर शांतशील की देख-रेख में हो रहा था। धीरा मौसी प्रायः रोज अस्पताल जाती और रोगिनी की सेवा करती थी। मौसी की यह निःस्वार्थ सेवा देखकर डॉक्टर शांतशील काफ़ी प्रभावित हुए। धीरा मौसी उनके मन में इस तरह बस गयी कि उन्हें उनमें अपनी मां की छवि दिखलायी पड़ने लगी। संबंध की यह डोर इतनी मजबूत होती चली गयी कि डॉक्टर शांतशील कब धीरा मौसी के दामाद बन गये, कोई जान भी नहीं सका।

धीरा मौसी की प्यारी पोती का कहना था कि “दादी यदि इंग्लैंड में पैदा हुई होती तो अवश्य माग्रेट थैचर कहलाती। दूसरों की सेवा करने की इतनी ताकत दादी में कहां से आती है कोई नहीं जानता। खुशी-खुशी सबकी सेवा में लगी रहती। सबसे स्नेह भाव बनाये रखती। थकना तो उसे आता ही नहीं है। कोई नहीं जानता धीरा मौसी कब सोती है और कब जागती है। हमेशा लड्डू की भाँति चक्कर काटती रहती है। उसने कभी दादी को चुपचाप बैठे हुए नहीं देखा। धन्य है उसकी दादी।” उसे लगता दादी का नाम सुधीरा नहीं अधीरा होना चाहिए था।

धीरा मौसी का छोटा बेटा दीपक जब तक अविवाहित था हमेशा मां की प्रशंसा करते हुए कहा करता — “मेरी मां पढ़ाई नहीं कर सकी तो क्या हुआ? अच्छे-अच्छे पढ़े-लिखे की नाकों में दम कर देती है वह। उच्चाधिकारी से लेकर

अर्दली तक मां का व्यवहार हमेशा एक-सा रहता। उसकी व्यवहार-कुशलता के सभी कायल थे। सबसे स्नेहपूर्ण संबंध रखना कोई मेरी मां से सीखे।”

वह अपनी छोटी बहन नीता से कहता — “यदि तू मां से कुछ भी सीख सकी तो सच मान, जीवन में कभी किसी से हार नहीं मानेगी। तेरा हर काम देखते ही देखते पूरा हो जायेगा। मां के जीवन में ऐसे अनेक उदाहरण हैं।”

छोटी बहू के सबसे छोटे भाई ने कार ड्राइविंग सीखते समय एक बच्चे को कुचल दिया था। ऐसे मामले में उसे कम से कम दस साल की सज़ा हो सकती थी। परंतु धीरा मौसी तो किसी की नानी, किसी की दादी, किसी की बुआ तो किसी की काकी थी, तो भला उसकी बहू के छोटे भाई को कैसे सज़ा हो जाती? उसने पुलिस ऑफिसर सांतरा बाबू और वकील विश्वाल बाबू की सहायता से सारा मामला जैसे-तैसे निपटा दिया। छोटकी बहू का वही छोटका भाई आज अमेरिका में इंजीनियर है। मौसी का किया गया उपकार उसे याद भी है अथवा नहीं कौन जाने?

धीरा मौसी की सास के गांव का एक गरीब लड़का सुमंत एक दिन मौसी के पास आया और अपनी दुःख भरी कहानी सुनाने लगा। मौसी ने दूसरे ही दिन दास बाबू से कहकर सुमंत को उनके घर ट्यूशन पढ़ाने का काम दिलवा दिया। बाद में मौसी के कहने पर दास बाबू ने सुमंत के पढ़ने-लिखने और रहने-खाने की सारी व्यवस्था कर दी। दास बाबू की मेहरबानी से सुमंत पढ़-लिखकर एक ओ. एस. ऑफिसर बन गया। आजकल वह जब भी मौसी को देखता है कन्नी काट कर चल देता है। धीरा मौसी इसका बुरा नहीं मानती। वह तो लोगों से केवल इतना कहती है कि — “गरीब घर का लड़का अपनी मेहनत से आदमी बन गया, इससे ज़्यादा अच्छी बात और क्या हो सकती है? बस अपनी विधवा मां की देखभाल अच्छी तरह से करता रहे, बस यही काफ़ी है।”

विश्वाल बाबू की पत्नी को कैंसर हो गया था। किसी को उम्मीद नहीं थी कि वह बच पायेगी। किंतु धीरा मौसी की दिन-रात की सेवा-सुश्रुषा, डॉक्टर की मेहनत और भगवान की कृपा से वह लगभग ठीक होकर अपने घर का काम-काज भी करने लगी है। सभी यही कहते हैं कि मौसी ने ही उसे जीवनदान दिया है। इतनी सेवा तो अपनी मां भी नहीं करती। मौसी का यह उपकार क्या कभी विश्वाल बाबू भूल पायेंगे?

पड़ोस में रहनेवाले पुलिस ऑफिसर सांतरा बाबू की बेटी जब रातों-रात घर छोड़कर अपने ड्राइवर के साथ भाग गयी थी तो धीरा मौसी ने ही सांतरा बाबू को संभाला था। वे अपनी इज्जत उछाले जाने के डर से पुलिस में रिपोर्ट करवाने भी नहीं गये थे। सब कुछ चुपचाप बर्दाश्त कर जाना चाहते थे, किंतु उनकी पत्नी रो-रोकर बीमार पड़ गयी थी। उनकी यह हालत देखकर मौसी चुप नहीं बैठ पायीं। मुहल्ले के लड़कों की मदद से चौबीस घंटे के भीतर धीरा मौसी लड़की को लेकर घर आ गयीं। बात को समाज में फैलने से पहले मौसी ने अपने गांव के एक मेधावी छात्र के साथ सब कुछ साफ़-साफ़ बताकर उसकी शादी करवा दी। लड़का गरीब घर का था। सिर पर से पिता का साया उठ गया था। अपनी विधवा मां के साथ वह घर का काम-काज भी देखता था और कॉलेज की पढ़ाई पूरी करने में भी लगा हुआ था। विवाह के तीन साल भी पूरे नहीं हुए थे कि उस मेधावी युवक ने आई. ए. एस. की परीक्षा पास कर ली और आज एक बड़ा ऑफिसर बन कर सुखी जीवन जी रहा है। सांतरा बाबू के परिवार वालों की तो खुशी का ठिकाना नहीं रहा। मौसी की इस सूझ-बूझ के कारण ही सांतरा बाबू की बेटी का भाग्य फिर गया। अब उनका परिवार धीरा मौसी के पड़ोस में नहीं रहता है। किंतु मौसी तो सदैव उन लोगों के दिलों में रहती है।

मौसी के इसी स्वभाव एवं दूरदर्शी क्रिया-कलापों के कारण स्वजन-परिजन के घर जब भी कोई आयोजन होता तो सबसे पहले धीरा मौसी याद आती। वह भी तुरंत जाने के लिए तैयार हो जाती। उसके इस स्वभाव से उसकी बेटी सुचरिता को बड़ी चिढ़ होती। एक दिन मौक़ा मिलते ही उसने अपनी मां से कहा — “अच्छा मां! क्या तुमने इन लोगों के काम करने का ठेका ले रखा है? कभी आराम से घर में बैठने का मन नहीं करता? तुम्हारे इसी स्वभाव के कारण भाभियां प्रसव के समय भी मायके नहीं जातीं। सेवा करने वाली सास तो बैठी है फिर अपनी मां को तकलीफ़ देने के लिए मायके क्यों जायें? उस पर तुम्हारा यह कि उनके रिश्तेदार भी वक्रत पड़ने पर अपने लाव-लशकर के साथ यहां डेरा डाल देते हैं। आखिर तुम इन लोगों के लिए क्यों जान खपाती रहती हो? क्या ज़रूरत है इस प्रकार सबकी भलाई करने की? उम्र हो रही है थोड़ा अपने शरीर का भी तो ख्याल रखो.”

बेटी की खीज भरी बातें सुनने के बाद मौसी मुस्कराते हुए बोली — “अरी बेटी! वे लोग मुझे मां समान मानते हैं, तो क्या मैं उनके प्यार को ठुकरा दूंगी? तुम्हीं बताओ अगर उनके हृदय में मेरे लिए आदर का भाव नहीं होता तो इतने बड़े-बड़े लोग मेरी इस छोटी-सी कुटिया में क्यों आते? सबके सुख-दुख में थोड़ी-बहुत सहायता करने की शक्ति मुझे भगवान ने दी है और मैं जब कर पाती हूँ तो फिर करने से क्यों कतराऊंगी? जैसे दान करने से विद्या नहीं घटती है, वैसे ही किसी की सेवा करने से शक्ति कम नहीं होती, बल्कि मन को शांति और तन को स्फूर्ति मिलती है। तू तो जानती है, मैं ठहरी मूर्ख, अनपढ़ औरत! न वेद-पुराण पढ़ सकती हूँ और न श्लोक, मंत्र आदि का उच्चारण कर पाती हूँ। न पूजा-पाठ की विधि जानती हूँ और न नियम-व्रत का पालन करने का समय निकाल पाती हूँ। बस जानती हूँ तो सिर्फ़ नहा-धोकर गोसाईं घर में टंगी हुई तस्वीरों पर फूल चढ़ाना और अगरबत्ती जलाकर उनके आगे अपना सिर झुकाना। ऐसे में यदि किसी ज़रूरतमंद के काम में आ सकती हूँ तो उनकी सेवा करने से अपने आपको क्यों वंचित रखूंगी? उनकी तकलीफ़ों में उनके साथ खड़ा होना, उनके कंधे से कंधा मिलाकर कुछ करने की कोशिश करना, उनके निराश मन में आशा का संचार करना, उन्हें ढाढ़स बंधाना कैसे छोड़ दूंगी? मेरे लिए तो यही पूजा है?”

मां की बातें सुनकर सुचरिता ने मुंह चिढ़ाते हुए कहा — “तुम्हारे साथ बहस करने से कोई फ़ायदा नहीं है। तुमको कुछ भी समझ में नहीं आता। सब तुम्हारी अच्छाई का लाभ उठाना चाहते हैं। छोटे भाई को भुवनेश्वर में सरकारी क्वार्टर मिल गया है। अपने परिवार को लेकर वहां शिफ़्ट कर सकता है, किंतु नहीं करेगा। यहीं पर टिका रहेगा। वहां जाने पर मुफ्त की नौकरानी कहां से मिलेगी? हमेशा कुम्हड़े की भांति मुंह फुलाये लाट साहब की तरह इधर से उधर चक्कर काटता रहता है किंतु कभी यह नहीं पूछता कि मां की तबियत कैसी है, उसकी आंखों का ऑपरेशन कब होगा अथवा उन्हें किसी चीज़ की ज़रूरत तो नहीं है? उसे इन सब बातों की कोई चिंता नहीं है। भाभी भी तैयार होकर कभी मार्केटिंग तो कभी ब्यूटी पार्लर के लिए निकल जाती है और बच्चों की सभी ज़रूरतें तुम पूरी करती रहती हो। अगर घर में रही तो टी. वी. देखेगी अथवा नॉवेल पढ़ेगी। मैंने तो कभी नहीं देखा कि तुम्हारे लिए किसी दिन



खाना परोस कर भी दे गयी हो. जब थक-मर कर बाहर से आती हो तो क्या उसने कभी पांव दबाने की जहमत भी उठायी है? लेकिन तुम्हें यह सब दिखलायी ही कहां पड़ता है? मैं तो यूँ ही बक-बक करती रहती हूँ.”

धीरा मौसी ने उसे शांत करते हुए कहा — “बेटा इतना बोलना अच्छा नहीं होता. शुक्र मान कि भगवान की कृपा से अभी तक मेरे हाथ-पैर ठीक-ठाक हैं और यह मेरा भाग्य ही है कि बहू अब तक मुझसे अपना हाथ-पांव नहीं दबवाती है. नहीं तो जब उसकी बड़ी भाभी की कमर की हड्डी खिसक गयी थी तो कई महीनों तक मुझे ही तेल मालिश करने की ज़िम्मेदारी उठानी पड़ी थी. उसे और किसी की मालिश पसंद ही नहीं आती थी. मेरे हाथों से ही आराम मिलता था. अभी तक लोग मेरे ऊपर निर्भर हैं. मेरे बिना उनका काम नहीं चलता. यह क्या कम बात है? सोचकर देख ज़रा!”

“क्या सोचूं? इसीलिए तो भाभियां मायके नहीं जातीं. भाई अपने सरकारी क्वार्टर में शिफ्ट नहीं करते, कोई भी तुमसे दूर नहीं जाना चाहता. ऐसी सेवा करनेवाली उन्हें और कहां मिलेगी? बड़े भाई का ब्रह्मपुर ट्रान्सफर होकर दो साल हो गये, परंतु परिवार लेकर नहीं गये. बहाना यह है कि बच्चे कॉन्वेंट में पढ़ते हैं. अरे भाई, ब्रह्मपुर में क्या कॉन्वेंट नहीं है? सब भाभी की चालाकी है. महारानी को वहां बच्चों को खुद संभालना पड़ेगा. किचन में काम करना पड़ेगा. यहां तो बस सासू मां ज़िंदा है. खुद कुछ करने-धरने की क्या ज़रूरत है? तुम्हारी दोनों बहुएं बहुत चालाक हैं. तुम जिसे धर्म बेटी मानती हो वो रीना और शांति, वे दोनों बेचारी हमेशा इनका आगे, पीछे करती रहती हैं. मुफ्त की दो-दो नौकरानियां वहां कहां मिलेंगी? इतना करने पर भी तुम्हारी ये बहुएं पीठ पीछे तुम्हारी शिकायत करने से बाज नहीं आतीं.” — सुचरिता बिना कॉमा-फुलस्टॉप के बेधड़क बोलती चली जा रही थी, लेकिन धीरा मौसी अपनी बेटी की इन बातों से बिल्कुल अनजान बनी उसका हाथ पकड़ कर बोली — “अच्छा, जा तो ज़रा भीतर से कंघी और तेल ले आ. देख तेरे बाल कितने रूखे पड़ गये हैं. थोड़ा तेल लगाकर थकर देती हूँ. ... लगता है जट्टे पड़ गये हैं.”

ऐसी सहजता जीने वाली धीरा मौसी अब इस दुनिया में नहीं रही. अचानक सब कुछ छोड़कर परलोक चली गयी. आज उसका एकादशाह है. सविता धीरा मौसी के अस्थि

कलश के सामने चुपचाप बैठी थी. पिछले दिनों की तरह-तरह की बातों को यादकर रोये जा रही थी. धीरा मौसी के साथ उसका न खून का कोई रिश्ता था और न जाति का, लेकिन मौसी के दिल का रिश्ता इस प्रकार से जुड़ गया था कि उसे लगता है उसका सब कुछ लुट गया हो. मौसी के जाने से किसका क्या गया, वह नहीं जानती, परंतु वह तो जैसे अनाथ ही हो गयी....

सविता महज पांच साल की रही होगी जब एक स्कूटर दुर्घटना में उसके पिता जी चल बसे थे. चार दिनों तक अस्पताल में वे ज़िंदगी और मौत से लड़ते रहे थे. किंतु अंत में ज़िंदगी दगा दे गयी. दम तोड़ने से पूर्व उनकी दृष्टि पास खड़ी धीरा मौसी के चेहरे पर अटक गयी थी. मौसी सब समझ रही थी. उसने कहा भी था — “आप चिंता न करें... मिलू और सवि मेरी ज़िम्मेदारी हैं... जब तक मैं हूँ आप इनके लिए परेशान न हों...” शायद वे सब कुछ समझ गये थे तभी तो निश्चिंत होकर सदा के लिए सो गये थे.

धीरा मौसी के घर के पिछवाड़े एक एसबेस्टस के घर में सविता अपनी मां के साथ रहती थी. उसकी माली हालत बहुत ही खराब थी. उस छोटे-से घर का भाड़ा देना भी मिलू के लिए बहुत कठिन था. धीरा मौसी ने सविता की मां को सिलाई सीखने के लिए भेज कर सवि की पढ़ाई की व्यवस्था करवा दी. सिलाई सीखने के बाद सविता की मां ने इतनी मेहनत की कि आज वह इलाके में एक जानी-मानी लेडी टेलर के रूप में अपनी पहचान बना चुकी है. उसकी दुकान पर हमेशा ग्राहकों की भीड़ लगी रहती है. सविता की पढ़ाई बिना किसी अड़चन के सुविधापूर्वक चलती रही और आज वह भी एक वैज्ञानिक के रूप में अपनी ख़ास पहचान बना चुकी है. सविता यह अच्छी तरह जानती है उसके जीवन में जो खुशहाली के पल आये हैं उसका सारा श्रेय धीरा मौसी को ही जाता है. उसी मौसी को अब वह कभी देख नहीं पायेगी. ज़रूरत पड़ने पर उनसे सलाह-मशविरा भी नहीं कर सकेगी.

दो दिन पहले ही सविता विदेश से लौटी थी. घर आते ही मां ने बताया कि धीरा मौसी नहीं रही. वह कुछ दिनों से बीमार चल रही थी. ऑपरेशन के लिए तीन-चार लाख रुपयों की ज़रूरत थी. घर के लोग, रिश्तेदार, स्वजन, परिजन सभी आपस में ही उलझ गये कि आखिर इस बूढ़ी के लिए इतने पैसे कौन खर्च करेगा? सभी अपनी-अपनी

असुविधाएं गिनाने में लग गये. इसी सोच-विचार और हील-हुज्जत में कुछ दिन और निकल गये. जब बाहर वालों को पता चला तो डॉक्टर मिताली महांती, विश्वाल बाबू, सांतरा बाबू और स्वयं उसकी मां ने मिलकर आपस में इतना पैसा इकट्ठा किया कि मौसी को दिल्ली के किसी बड़े अस्पताल में ले जाकर दिखलाया जाये और वहीं ऑपरेशन भी करवाया जाये. ऑपरेशन दिल्ली के एम्स में हुआ भी किंतु तब तक काफ़ी देर हो गयी थी. डॉक्टरों ने काफ़ी कोशिश की. किसी तरह ऑपरेशन होने के बाद मौसी अपने घर लौट गयी. डॉक्टर मिताली महांती ने अपने नर्सिंग होम में ही मौसी के लिए सारी व्यवस्था कर दी थी कि न जाने कब मेडिकल असिस्टेंट की आवश्यकता आ पड़े. आखिर उनकी उम्र ही क्या थी? सत्तर-बहत्तर साल की उम्र भी क्या मरने की उम्र होती है? विदेशों में तो लोग सौ साल आराम से जीते हैं. इतनी दौड़ धूप करने वाली हष्ट-पुष्ट महिला क्या बूढ़ी कहीं जा सकती है? परिवार के लोगों ने आखिर यह कैसे सोच लिया? जो सबके लिए हमेशा सबसे आगे खड़ी रहती थी जब उसको किसी की मदद की ज़रूरत पड़ी तो स्वयं उसके परिवार वाले ही पीछे हट गये.

सविता उसी प्रकार बैठी हुई मां के द्वारा कही हुई सारी बातें याद किये जा रही थी और उसकी आंखों से आंसू की पतली धारा अस्थि कलश के आगे लगातार टप-टपकर गिर रही थी.

सविता की मां प्रायः रोज़ समय निकाल कर कुछ देर मौसी के पास बैठती थी. एक दिन मौसी ने उदासी से डूबे हुए शब्दों से कहा था — “मिलू! ज़िंदगी भर सबके लिए दौड़ते-दौड़ते अब पूरी तरह थक गयी हूं. अपने ही लोगों द्वारा अब अनादर और अवहेलना के भाव बर्दाश्त नहीं होते. जिन्हें मैंने नौ महीने पेट में रखा, अपनी सारी सुविधाओं को त्यागकर उनके, सुख-दुःख का ख्याल रखा, उनको आदमी बनाने के लिए हर संभव प्रयास किया. किंतु आज जब मेरा ही मुंह देखना नहीं चाहते तो मेरे जीने का क्या मतलब है, तुम्हीं बताओ? मैं जानती हूं कि आज अगर मेरे पास संचित

संपत्ति होती, बैंक या पोस्ट ऑफिस में ढेर सारे पैसे जमा होते, मेरे नाम से ज़मीन-जायदाद होती तो आज भी वे मेरे आगे-पीछे घूमते, मेरा सम्मान करते. अच्छा हुआ सब देखने से पहले ही तेरे मौसा इस दुनिया से चले गये. तुम लोग न जाने क्यों इस अभागन के लिए इतना कष्ट उठा रही हो? मुझे और जीने की तनिक भी इच्छा नहीं है.”

शायद इसी इच्छा शक्ति के समाप्त होने के कारण धीरा मौसी हमें छोड़कर इतनी जल्दी चली गयी. सविता को मां की एक बात और याद हो आयी. मां बोली थी कि एक दिन बिस्तर पर पड़ी-पड़ी धीरा मौसी डॉक्टर मिताली से कह रही थी — “मिताली, दिल्ली के डॉक्टरों ने तो कहा था कि मेरे पास बस एक महीने का समय बचा है परंतु मुझे तो लगता है कि वहां से लौटने के बाद एक महीना कब से गुजर गया... फिर मैं मरती क्यों नहीं हूं.” मौसी की बातें सुनकर डॉक्टर मिताली अपने आंसुओं पर काबू नहीं रख सकी थी और रूमाल से आंखें पोंछती हुई बाहर निकल गयी थी. कमरे से बाहर आते ही वह फफक-फफक कर रोने लगी थी...

यही सब सोच-सोचकर सविता के आंसू थमने का नाम नहीं ले रहे थे. अचानक उसके होंठ बुदबुदा उठे — “मौसी, अब कौन कहेगा कि मेरी पढ़ाकू पोती आ गयी. भई, कोई दो-चार अरसा पीठा (चावल और गुड़ से बना पकवान) लाकर इसे दो... इसे अरसा पीठा बहुत पसंद है.” ... सविता ने मौसी के अस्थि-कलश को एक बार फिर से माथा नवाकर प्रणाम किया और मन ही मन ईश्वर से दिवंगत आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना करती हुई धीरे-धीरे मुख्य गेट की ओर बढ़ गयी.

अनुवादक :

- डॉ. मधुसूदन साहा

सौरभ सदन, डी/९०, कोयलनगर,

राउरकेला-७६९०१४(ओड़िशा)

मो. ९८६१५६४७२९

ईमेल : dr.saha.ms@gmail.com

## पाठकों/ग्राहकों से निवेदन

कृपया 'कथाबिंब' की सदस्यता राशि मनी ऑर्डर से भेजते समय फ़ॉर्म पर अपना नाम, पता, पिन कोड सहित अंग्रेज़ी में साफ़-साफ़ लिखें. मनीऑर्डर भेजने के बाद पोस्टकार्ड पर पूरे पते सहित इसकी सूचना अवश्य दें. आपकी सदस्यता अगले अंक से लागू होगी. पते में परिवर्तन की सूचना भेजते समय कृपया नये पते के साथ पुराने पते का उल्लेख करना न भूलें.

- संपादक

## बाट जीहते हुए

डॉ. भगवती प्रसाद द्विवेदी

हरे बांस की अर्थी सजा दी गयी है. चाची की मृत देह में घी लेप कर उन्हें अर्थी पर लिटा दिया गया है. चारों कोनों पर अगरबतियां जला दी गयी हैं. इत्र-फुलैल से वातावरण महक उठा है. मैं चाची की अर्थी को कंधा देने के लिए आगे बढ़ता हूं. घरी-घंट बज उठता है और 'राम नाम सत् है' के स्वर हवा में लहराने लगते हैं. हम सभी गंगा घाट की ओर कुलांचते हुए बढ़ चले हैं. आंगन से आ रही करुण आवाज़ आहिस्ता-आहिस्ता मंद पड़ती जा रही है.

मैं आज अपना अहोभाग्य समझता हूं कि चाची की शवयात्रा में शामिल होने का सौभाग्य मुझे नसीब हो पाया. इसे संयोग ही कहा जायेगा कि मुझे समय से तार मिल गया और सरकारी नौकरी से छुट्टी मिलने में भी ज़्यादा परेशानी का सामना नहीं करना पड़ा. चाची की अंतिम इच्छा भी यही थी कि उनको मुखाग्नि मैं ही दूं. बाबूजी बछिया छूने के लिए उनसे बार-बार आग्रह करते रहे, मगर चाची टालती रहीं. उनकी आंखें मेरी ही बाट जोह रही थीं, फिर मैं भला कैसे नहीं आता? मुझ पर उनका सच्चा स्नेह जो था. 'जापर जाकर सत्य सनेहू'...

शून्य में घूरती हुई चाची की आंखें अचानक मुझे देखते ही शायद भावातिरेक में छलछला आयी थीं. फटाफट बछिया छुआने की व्यवस्था की गयी थी. उन्होंने मेरी पीठ थपथपायी थी. ज्यों ही कुछ कहने की गरज से उनकी जुबान लड़खड़ायी, मुंह खुला-का-खुला रह गया और निस्तेज आंखें एकाएक स्थिर हो गयी थीं.

परिवार के सभी लोगों की आंखें सावन-भादों की तरह बरसने लगी थीं. मगर मैं चुपचाप बस चाची के चेहरे को ही ताकता रह गया था. लगता था, चाची अब आशीषते हुए गदगद स्वर में कह उठेंगी — 'युग-युग जियो बचवा! कहो, कब आये?'

चाची का भतीजा होकर भी मैं उनका बेटा था और

मेरे लिए वे चाची की बजाय मां ही थीं. सिर्फ उन्होंने अपनी कोख से मुझे जन्मा भर नहीं था. डेढ़ बरस की अवस्था में ही मेरी मां का गोलोकवास हो गया था और बाबू जी ने सौतेली मां लाने से इनकार कर दिया था. तब चाची ने मुझे पाल-पोसकर बड़ा किया था और वह सब कुछ दिया था, जो एक मां अपने बेटे को दिया करती है. उनका लाड़-प्यार आज तक भूल नहीं पाता. बात-बेबात मेरा रिरियाना, रूठना और उनका पुचकारना-दुलारना. तभी तो मैं चाची की बजाय उन्हें मां का संबोधन ही देता रहा था.

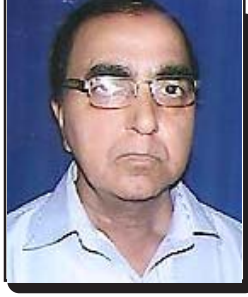
मगर जब होश संभाला, तो एक रोज़ किसी दोस्त ने छेड़ा था, 'यह तो अपनी लंगड़ी मां का बेटा है.'

'धत् ! वे मेरी अपनी मां थोड़े ही हैं.' मैंने सफ़ाई पेश की थी, 'चाची हैं... चाची.'

तभी से मैंने उन्हें मां कहने में शर्म महसूस की थी और चाची का संबोधन देने लगा था. पहली मर्तबा इस संबोधन का प्रयोग करते हुए थोड़ा हकलाया ज़रूर. वे भी मुझे अचरज से भरकर निहारने लगी थीं, फिर उन्होंने दूसरी ओर मुंह घुमाकर चोरी से आंखें पोंछ ली थीं. लगा था, जैसे अंदर-ही-अंदर कुछ दरक गया हो. मेरे लिए भले ही वे मां की बजाय अब चाची हो गयी थीं, पर मैं आज तक उनका वही बेटा था — अपना बबुआ.

बुढ़ापे में चाची को मेरे अबोध बच्चे 'लंगड़ी-चाची' कहकर पुकारने लगे थे, पर इस संबोधन को भी उन्होंने सहजता से ही लिया था. कितना सहज था चाची का स्वभाव! क्रदम-क्रदम पर समझौतावादी दृष्टिकोण.

चाची जन्म से लंगड़ी नहीं थीं. उनकी लंगड़ाहट सामाजिक रूढ़ियों और मान्यताओं की लंगड़ाहट थी. बचपन में जब चाची अभी गुड्डा-गुडिया का ब्याह ही रचाया करती थीं, तभी मां-बाप ने उनके हाथ पीले कर दिये थे. एक फुदकते हुए पाखी के पंखों को नोंचकर उसे एक पिंजरे में



जुलाई, १९५५; बलिया (उ. प्र.) के दलछपरा गांव में.  
एम. एस-सी. (रसायन विज्ञान).

: प्रकाशन :

‘घीरहरण’, ‘अस्तित्वबोध’, ‘फीलगुड तथा अन्य कहानियां’ (कहानी-संग्रह); ‘नयी कोपलों की खातिर’ (नवगीत), ‘भविष्य का वर्तमान’, ‘थाती’ (लघुकथा-संग्रह); ‘भिखारी ठाकुर : भोजपुरी के भारतेन्दु’, ‘महेन्द्र मिसिर : भोजपुरी गीतकार’ (आलोचना), ‘भारतीय जनजातियां : कल, आज और कल’ (शोध), ‘ठेंगा’ (भोजपुरी कहानी-संग्रह), ‘बिहार के लोकरंग’ (लोक साहित्य); ‘जौ-जौ आगर’ (भोजपुरी कविता-संग्रह), दो भोजपुरी उपन्यास (‘दरद के डहर’, ‘सांच के आंच’) तथा बाल-साहित्य की अठहत्तर (७८) पुस्तकें. ‘मेरी प्रिय बाल कहानियां’ (५२ कहानियां) तथा ‘मेरी प्रिय बाल कविताएं’ (२५१ बालगीत) विशेष रूप से उल्लेखनीय. म. प्र. संस्कृति परिषद से ‘भोजपुरी कथाएं’ सद्यः प्रकाशित.

: सम्मान :

बिहार राष्ट्रभाषा परिषद के तत्वावधान में ‘विशिष्ट साहित्य-सेवा सम्मान,’ उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ से वर्ष २०१३ का ‘निराला पुरस्कार,’ बिहार सरकार के राजभाषा विभाग द्वारा पुरस्कृत. उत्कृष्ट बाल-साहित्य-सर्जना हेतु, चिल्ड्रन्स बुक ट्रस्ट, शकुंतला सिरोठिया बालसाहित्य पुरस्कार, चमेली देवी महेंद्र सम्मान समेत कई राष्ट्रीय पुरस्कार/सम्मान. ‘विद्या-वाचस्पति’ (पीएच-डी) की मानद उपाधि.

: संप्रति :

भारत संचार निगम की सेवा से संबद्ध.

कैद कर लिया गया था.

चाचा तब तक परदेशी हो चुके थे और किसी मारवाड़ी के यहां दरबानी किया करते थे. उन्हें टीबी हो गयी थी और गौने से पूर्व ही उन्होंने आंखें मूंद ली थीं.

उस रोज़ महाशिवरात्रि का त्योहार था और चाची

औघड़दानी की पूजा करने शिवाले की सीढ़ियों पर चढ़ रही थीं. तभी किसी ने उन्हें चाचा की मौत की सूचना दी और वे धड़ाम से गिरकर अपना होश-हवास तक खो बैठी थीं. सीढ़ियों से लुढ़कते हुए चाची के पैर की हड्डियां चटख गयी थीं और वे जीवन भर के लिए लंगड़ी हो गयी थीं.

उनकी मांग से सिंदूर की लकीर पोंछ दी गयी थी, हाथ की चूड़ियों को चकनाचूर कर दिया गया. चाची पहली मर्तबा जब डोली में बैठकर ससुराल आयीं तो एक विधवा के रूप में.

होश संभालने पर जब दादी ने चाची के विषय में खुलकर सब कुछ बताया था, तो मुझे मर्मांतक पीड़ा हुई थी और चाची से एकांत में जाकर मैं पूछ ही बैठा था — ‘चाची, नानाजी ने फिर दूसरी जगह आपकी शादी क्यों नहीं कर दी?’

चाची की आंखें डबडबा आयी थीं. उन्होंने आंचल से नाक पोंछते हुए कहा था — ‘यह बात फिर दुबारा मत कहना, बबुआ. यह तो जन्म-जन्म का गठजोड़ है. ऐसा सोचना भी पाप है. सब करम का फेर है, बचवा. जरूर पिछले जन्म में कोई भूल-चूक हो गयी होगी. तभी तो उसका फल भुगत रही हूं. अगले जन्म में तुम्हारे चाचा से फिर भेंट होगी.’

कुंआरी विधवा के रूप में जिंदगी काटते हुए चाची शायद अगले जन्म की ही बाट जोहती रही होंगी. आज चाची के प्राण-पखेरू चाचा से मिलने उड़ चले होंगे. मगर चाचा भी क्या वहां वाकई चाची की बाट जोह रहे होंगे? और अगर नहीं तो?....

मैं अपने आपसे ही बचकाना सवाल उछालकर चारों तरफ़ शून्य में देखने लगता हूं. गंगा घाट पर पहुंचते ही अर्थी को एक किनारे रखकर चिता सजाने की व्यवस्था की जाने लगी थी. अर्थी की ओर एक बार पुनः नज़रें दौड़ाता हूं. लगता है, जैसे एक साथ कई अर्थियां रखी हुई हों — चाची की अर्थी, दीपा भौजी की अर्थी, गंगा बुआ की अर्थी. यहां से वहां तक बस अर्थियां-ही-अर्थियां!

□

दीपा भौजी की चेचक के दागों वाली सांवली सूरत एकाएक आंखों में उभर आयी है. यादों की कड़ियां अपने-आप जुड़ती जा रही हैं...

‘बबुआ-जी, उनके नाम एक पाती लिख दीजिएगा?’

दीपा भौजी ने घूँघट की ओट से झाँकते हुए सवाल उछाला था।

मैंने क्रिताबों से निगाहें ऊपर उठायीं, तो दीपा भौजी मानों शर्म से ज़मीन में गड़ने लगीं।

‘क्यों नहीं! लाइए!’ मैंने उनके हाथ का लिफ़ाफ़ा लेते हुए कहा था। जब मैंने सुधाकर भैया का पता-ठिकाना जानना चाहा, तो उन्होंने बस ‘कलकत्ता’ बताया। मैंने उनसे पूरा पता लाने को कहा। मगर वे बस बार-बार मेरी चिरौरी करती रहीं, जैसे मैं पत्र लिखने से आनाकानी कर रहा होऊँ। अब मैं भला उन्हें कैसे समझाता कि कलकत्ता महानगर में हजारों सुधाकर होंगे। फिर डाकिया किस सुधाकर को खत थमायेगा?

सुधाकर भैया ने गौना कराकर दीपा भौजी को घर में बिठा दिया था। खुद परदेश की रोटी कमाने निकले, तो फिर घर की कोई खोज-खबर ही न ली। दीपा भौजी बस उनकी बाट जोहती रहीं। मुँडेर पर ज्योंही कोई कागा बैठता, दीपा भौजी सारे काम-काज छोड़-छाड़कर आंगन में आ धमकतीं और छूटते ही पूछ बैठतीं — ‘काग भैया, उचरो तो, वे कब आ रहे हैं?’ फिर वे कागा को दूध-भात खिलाने का वादा करतीं। उसकी चोंच को सोने से मढ़वा देने का प्रलोभन देतीं। इस पर भी अगर कागा नहीं बोलता तो वे ढेला फेंककर उसे उड़ा देतीं।

बूढ़ी सास भी दीपा भौजी को ही गाहे-बगाहे कोसा करती थीं। ज़रूर इस डायन ने नागिन बनकर मेरे लाल को डस लिया होगा। इसी की सब करतूत हैं, नहीं तो वह आता क्यों नहीं?

दीपा भौजी की आंखें झमाझम बरसने लगती थीं। दीपा भौजी किवाड़ की आड़ में खड़ी हो, हाथ दिखा पंडा से पूछ बैठती थीं, ‘ज़रा देखिए तो बाबा. वे कब आयेंगे?’

अगर पंडा, भैया के जल्दी आने की भविष्यवाणी करता, तो हुलसित होकर दीपा भौजी सेर-दो-सेर अनाज उसकी झोली में डाल देती थीं।

मगर सुधाकर भैया को नहीं आना था, नहीं आये। दीपा भौजी अब मन-ही-मन कहने लगी थीं — ‘लगता है, उनको किसी बंगालन ने वहाँ भेड़ा बना दिया है. ठीक ही तो कहते हैं लोग-पूरब मत जाइयो ऐ मोरे राजा...’

बाद में पता चला था कि सुधाकर भैया ने सचमुच वहाँ जाकर दूसरा घर बसा लिया था, क्योंकि दीपा भौजी की

चेचक के दागों वाली सांवली सूरत देखकर ही उन्हें उबकाई आने लगी थी और वहाँ एक खूबसूरत गुड़िया-सी बंगाली छोकरी के जाल में वे बुरी तरह उलझ गये थे।

एक बार मैंने दीपा भौजी को समझाने की कोशिश की थी, ‘भौजी, आप वहाँ सुधाकर भैया के दफ़्तर में जाकर शिकायत कीजिए. आप उनकी पहली पत्नी हैं. फिर उन्हें दो जीवित पत्नी रखने का कोई हक़ नहीं है.’

मगर भौजी ने अन्यमनस्क भाव से कहा था, ‘नहीं बबुआजी, मैं वहाँ दाल-भात में मूसरचंद बनने कतई नहीं जाऊंगी. वे जहाँ भी रहें, सुखी रहें. मेरा सुहाग अमर रहे. अगर मेरा प्रेम सच्चा होगा, तो उनको एक-न-एक दिन यहाँ आना ही पड़ेगा.’

मैं दीपा भौजी के चेहरे की ओर टुकुर-टुकुर ताकने लगा था. उनका ललाट गर्व और आत्मविश्वास से दीप्तिमान हो उठा था. सिंदूर की लाली और माथे की बिंदी के बीच मोती की बूंदें झिलमिलाने लगी थीं. काश, सुधाकर भैया, दीपा भौजी के गंगाजल-से मन की सुघड़ता को निरख पाते. □

गंगा बुआ का निर्मल मन भी तो गंगाजल-सा ही पवित्र था. जैसा नाम, वैसा गुण. मन-पाखी गंगा बुआ के ढाबे में उड़ चला है, जहाँ वे घंटों गुमसुम बैठी हुई आकाश की ओर ताकती रहती थीं — पिंजरे में क़ैद एक बेबस मैना की मानिंद.

उनका ब्याह उनके मां-बाबूजी ने धूमधाम के साथ रचाया था. फूफा फ़ौजी आदमी थे. अच्छे नाक-नक़श, बड़ी-बड़ी चमकीली आंखें और कटीली मूँछें. गंगा बुआ को लगा था, जैसे उन्हें बग़ैर मांगे ही बहुत कुछ मिल गया हो.

फूफा डेढ़-दो बरस में सिर्फ़ एक दफ़ा दस-पंद्रह दिनों के लिए गांव आते थे. गांव आकर भी ज़्यादातर बाहर ही रहते, खेत-जवार में या नाते-रिशतेदारों के बीच घिरे हुए.

सावन की झींसी पड़ रही है. मठिया पर झूलन हो रहा है. चौपाल में लोग कजरी गा रहे हैं. चारों तरफ़ बस हरियाली-ही-हरियाली. इधर आसमान से टपकती बूंदों की भाँति गंगा बुआ की आंखें बरस रही हैं — टप-टप!

फागुन का महीना मस्ती का आलम लिये आ गया है. होली के रंगों में पूरा गांव सराबोर हो गया है. झांझ-मंझीरे गड़गड़ाने लगे हैं. गांव में फाग खेलने की बहार है, ‘होरी’ और ‘कबीर’ गाने की हुड़दंग है. उधर गंगा बुआ की आंखें



बरस रही हैं — टप-टप.

सास गंगा बुआ का हाथ पंडितों से दिखा रही हैं, 'पंडित जी, इसके हाथ में बेटे की रेखा है या नहीं?'

गंगा बुआ मन-ही-मन बुदबुदाती हैं, 'लड़का क्या हाथ की लकीर से पैदा होगा?'

सास ओझा-सोखाओं के पास ले जाती हैं, भभूत-ताबीज़ दिलवाती हैं. पर फिर भी वहां ढाक के तीन पात.

'मांजी, पहले अपने बबुआ को तो बुलवाइए. वे आयेंगे ही नहीं तो...'

गंगा बुआ कुढ़कर एक रोज़ डरते-डरते कह ही उठती हैं.

'तू चुड़ैल है-चुड़ैल! तेरी कोख में ही कुछ है ही नहीं. बांझ-बहिला है तू!' सास गरजती हैं.

रोज़-रोज़ की तू-तू मैं-मैं शुरू हो जाती है और एक दिन गंगा बुआ हमेशा के लिए नैहर पठा दी जाती हैं.

मगर आज भी उन्हें भरपूर भरोसा है कि फूफा को एक दिन उन्हें लिवा जाने के लिए आना ही होगा. उनका बाट जोहना अब भी ज़ारी है. 'एक अहीर की एके गाय, नहीं रहे तो छूँछो खाय.'

कई दफ़ा गंगा बुआ को उनके घर वालों ने ओझा-गुनी को भी दिखाया है और पति को वश में करने के लिए उनके हाथ में गंडे-ताबीज़ बांध दिये हैं. हर वर्ष करवाचौथ का व्रत वे बड़े मनोयोग से करती हैं — 'जापर जाकर सत्य सनेहू...'

□

चाची को अर्थी से उठाकर चिता पर लिटा दिया गया है. मैंने उनके मुंह में आग दे दी है. चिता धू-धू कर जल उठी है. मुझे लग रहा है, जैसे सिर्फ़ चाची के ही नहीं, दीपा भौजी और गंगा बुआ के भी सतरंगे सपने जल रहे हों, आशाएं और इच्छाएं मानो राख होकर माटी में मिल रही हों. क्या अगले जन्म में भी वे यूं ही सब कुछ झेलने के बावजूद पति-परमेश्वर की बाट जोहती रहेंगी?

❧ द्वारा, प्रधान महाप्रबंधक,

दूरसंचार जिला,

२०४, टेलीफ़ोन भवन,

पोस्ट बॉक्स ११५, पटना-८००००१.

मो.: ९४३०६००३५८

ई-मेल : Dwivedi\_Ballia@rediffmail.com

## तुक्तक

❧ चंद्रमोहन प्रधान

जीवन की नदिया, ये कटते किनारे,  
तूफ़ानों में गुजरे पल-पल हमारे,  
कैसे ये कांस रहे, कैसे बबूल,  
नौका उमर की चली बिन सहारे !

❖ ❖ ❖

मन की खुली कैसी बात,  
सपनों में जगते की बात,  
धोखे में बीते हमारे,  
सोने के दिन और चांदी की रात !

❖ ❖ ❖

चंदा न हो तो क्या रात नहीं होती,  
मन की हो शह, तो क्या मात नहीं होती,  
सारे नियम यहां झूठे हैं सजना,  
बदली बिन जग में बरसात नहीं होती !

❖ ❖ ❖

यादों की परती ने कितना रस मांगा  
कलियों ने घूंघट से कितना है ताका,  
मन के सब द्वार रहे वैसे ही बंद पिया,  
फागुन ने कितने निहोरों से झांका ।

❖ ❖ ❖

मन की खुली कैसी बात,  
साजन की अनबूझी बातें हैं कितनी,  
सावन की भीगी ये रातें हैं कितनी,  
सारी उमर की पहेली अजब है  
हल करते बीतीं, बरसातें हैं कितनी !

❧ 'ज्ञान-कला केंद्र', आमगोला,

मुजफ्फरपुर-८४२००२.

फ़ोन : ०६२१-२२४२६८२



## मानवाधिकार

डॉ. रीतजा 'श्यामा'

**सं**पादक के केबिन से जब रिपोर्टर प्रमोद बाहर निकला तब बहुत खुश था. शहर की धर्मशाला के नज़दीक हुई कल की बम ब्लास्ट की घटना का विस्तृत समाचार उसने ऐसा आकर्षक बना दिया था कि आज 'ज्वाला' पत्रिका की प्रतियां हाथों हाथ बिक गयीं. बम ब्लास्ट में घायल होकर या डर से भागने वालों के चित्र वह ले चुका था पर किसी का चेहरा स्पष्ट दिखाई न देने की वजह से उसने अपने पास की एक पुरानी फ़ोटो समाचार के साथ छपवाने दी थी. वह महज घटना का प्रतिनिधित्व करनेवाली फ़ोटो थी. उसमें एक दंगाग्रस्त आदमी हाथ जोड़े खड़ा था. आंखों में मौत का भय, साथ ही आंसू, चेहरे पर वेदना, पीड़ा का भाव, नंगे पांव, तन पर कमीज़ भी नहीं, केवल पैट, वह भी अधजली. मानो आगजनी से जी बचाकर भागा है. सामने खड़े लोगों से प्राणों की भीख मांग रहा है. रिपोर्टर प्रमोद ने गोधरा हत्याकांड के बाद के दंगों के दौरान वह फ़ोटो खींची थी. तब से कहीं पर होने वाले हिंसात्मक आंदोलन का वर्णन करना हो, मोर्चा, घेराव, लाठी चार्ज, आंसू गैस का इस्तेमाल, धरने के बीच आपस की मुठभेड़, चाहे कौन सा भी फ़साद हो, वह रिपोर्ट के साथ वही पुरानी फ़ोटो छपवाने के लिए देने लगा था. अलग से नयी फ़ोटो खींचने की अब उसे ज़रूरत नहीं महसूस होती थी. कल के समाचार के लिए प्रमोद ने फिर एक बार वही फ़ोटो छपने दी थी. वह चित्र इतना करुण था कि देखनेवाले का दिल दहल जाता. पाठक समझता कि इस फ़ोटो का यह आदमी आज ही के आंदोलन, आगजनी, दंगा फ़साद, बम ब्लास्ट की हिंसा का शिकार है.

प्रमोद ने अपने ही कार्यालय में कार्यरत मित्र हरीश को बुलाया. दोनों खुशियां मनाने सामने के होटल में जा रहे थे कि एक आदमी सामने आया. चेहरे पर वही करुण भाव, अधनंगा, फटी-पुरानी पैट, हाथ जोड़े हुए. प्रमोद ने ज़ेब में

हाथ डालकर जो सिक्का हाथ में आया, सामने किया. पर आदमी ने हथेली आगे नहीं की, हाथ वैसे ही रखे रहा और कहा —“मेरी फ़ोटो की वजह से आप इतना कुछ कमाते हैं, पैसा भी, कीर्ति भी, मुझे सिर्फ़ यह सिक्का?”

दोनों हठात रुक गये.

प्रमोद ने पूछा, “मतलब?”

आदमी ने कहा, “शहर में कहीं भी किसी भी कारणवश दंगा फ़साद, आंदोलन, घेराव, मोर्चा, बम ब्लास्ट, पथराव, आगजनी, जातीय मुठभेड़.... कुछ भी.... इसमें ज़ख्मी लोगों के प्रतिनिधि स्वरूप आप मेरी ही फ़ोटो छापते हैं. मुझे पहचाना नहीं?”

प्रमोद के साथ-साथ हरीश ने भी उसे निहारा. आदमी की दाढ़ी अस्तव्यस्त बढ़ी थी, चेहरा तो क्या, दोनों बांहें, कंधों से लेकर कमर तक का खुला शरीर तीव्र धूप से काला पड़ गया था, माथे पर बालों का जंगल.

“कौन हो तुम?”

“वही आदमी जो बम ब्लास्ट, गोधरा हत्याकांड, गुर्जर आंदोलन में, कल के ब्लास्ट में.. अत्याचारित आम आदमी... मैं वहीं हूँ.”

“हम तुम्हारा मतलब नहीं समझे....”

“आपने गोधरा हत्याकांड के बाद के दंगों के आंखों देखे हाल के लिए फ़ोटो खींची थी, वह मेरी ही थी. आप जब फ़ोटो खींच रहे थे, मैं वहीं तो था, आपके सामने ही. मैं मारनेवाले के सामने हाथ जोड़े गिड़गिड़ा रहा था... प्राणों की भीख मांग रहा था... मुझे बचाना तो दूर, आप यहां-वहां की फ़ोटो खींचने में व्यस्त थे... मेरी जान बची पर सब कुछ लुट चुका था... उस वक़्त कमीज़ गयी, अब तक दूसरी नहीं मिली है, देखिए, फटी अधजली पैट पहने अधनंगा घूमता हूँ. मैंने आपको अच्छी तरह पहचान लिया है...”

“क्या तुम पढ़े-लिखे हो?” हरीश ने पूछा.

## डॉ. शैलजा 'श्यामा'

बी. ए. संस्कृत (मराठी), बी. एड. मराठी, हिंदी,  
एम. ए. हिंदी, एम. एड. पीएच. डी (हिंदी).

: प्रकाशन :

'सद्भावना दर्पण', 'प्रभा-रश्मि', 'अंचल भारती', 'अवध  
पुष्पांजली', 'वर्तमान साहित्य', 'सेतु, सोचविचार आदि  
अनेक पत्र पत्रिकाओं में कहानियां, लघुकथाएं प्रकाशित.

: संप्रति :

३४ वर्षों तक हिंदी अध्यापन. अवकाश प्राप्त अध्यापिका.

तो वह कहने लगा, “हां, साब, कहीं पर भी, दंगा फसाद, शोर शराबा, मारपीट, आगजनी, पथराव, मोर्चा आदि हो जाने की खबर मिलते ही मैं आपकी 'ज्वाला' पत्रिका देखता हूँ. किसी से मांगकर पढ़ता भी हूँ... ऐसा चार-पांच बार हुआ, तब मैंने जाना कि आप खबर पाने में सफल हो जाते हैं पर फ़ोटो प्राप्त करने में नहीं, शायद आपके पास कोई दूसरी फ़ोटो होती ही नहीं! इस तरह आप मेरी वही फ़ोटो छपवा देते हैं... साब, आपका भी कोई जवाब नहीं...”

आदमी की बात बीच में ही काटकर प्रमोद ने सख्त आवाज़ में पूछा, “मगर तुम्हें इससे मतलब?”

“मुझे उस फ़ोटो की रॉयल्टी चाहिए.”

“हे!”

हरीश के मुख से विस्मय का उदगार निकला — “क्या? रॉयल्टी?”

प्रमोद भी चौंक गया.

“क्यों साब, चौंक क्यों गये? मेरी उस फ़ोटो से आपका नाम हुआ, 'ज्वाला' की खपत बढ़ गयी, आपका प्रमोशन भी हुआ होगा... आज तक जहां भी कहीं कई हादसे हुए उनको कवर स्टोरी में छापने और अखबारों की दुनिया में अपना रौब जमाने में मेरी उस फ़ोटो ने ही आप की मदद की है...”

हरीश से रहा नहीं गया. नाराज़गी जताते उसने कहा, “बड़े अवसरवादी हो...”

उपहास और गर्व युक्त आवाज़ में आदमी ने प्रति-प्रश्न किया, “क्यों आप अवसरवादी नहीं हैं? मुझे तो परिस्थिति ने बनाया है. आप व्यवसाय के नाम पर अपना

अवसरवाद छिपाते हैं, पर मैं नहीं. निर्वाह के साधन जुटाने में मेरी फ़ोटो ने मदद की है. रॉयल्टी दीजिए साब, वरना....”

अब प्रमोद भी तैश में आ गया. उसने पूछा, “वरना क्या रे? धमकी देता है?”

“बिल्कुल नहीं साब, मैं गरीब आदमी क्या धमकी दूंगा? जिस कैप में मैं रहता हूँ वहां मानवाधिकारी आयोग के कई कार्यकर्ता आते रहते हैं. उन्हें बताकर अपनी उस फ़ोटो के उपयोग पर मैं बैन की मांग करूंगा... कहीं दंगे-फसाद, फालतू मारपीट, आगजनी हो, वहां दुःखी व्यक्ति के प्रतिनिधि स्वरूप मेरी वही फ़ोटो! आम आदमी की वह दुःखभरी छबि! साब, लाइए पांच सौ रुपए... पहले एक शर्ट ख़रीदूंगा... दो तीन दिन कहीं पर अच्छा खाना खाऊंगा...”

“यह फिरौती है....” प्रमोद ने निषेध करते कहा.

“तो समझिए फिरौती ही सही. मुझे कोई आपत्ति नहीं... कोई फ़र्क नहीं पड़ता. मेरी फ़ोटो का उपयोग मामूली आगजनी, जातीय, धार्मिक दंगा-फसाद, स्वकीय-परकीय के नाम पर, शोर-शराबा, चिल्ल-पौं... कहीं कुछ भी हो जाये... मेरी वही फ़ोटो आप हर समय उपयोग में लाते हैं, मुझे उसका मूल्य मिलना ही चाहिए....”

हठीला, मगरूर चेहरा लेकर वह आदमी खड़ा था. उसकी आवाज़ मृदु थी पर उससे निश्चय प्रगट हो रहा था. प्रमोद और हरीश दोनों चकित थे पर... प्रमोद द्वारा दिया पांच सौ का नोट ले आदमी चला गया.

होटल की ओर जाते हरीश ने कहा, “अब दोबारा पांच सौ का नोट न गंवायें इसलिए हमें वह फ़ोटो...”

उसका वाक्य पूरा होने के पूर्व ही प्रमोद ने कहा, “तुम चिंता मत करना हरीश! तुम्हें क्या लगता है, ऐसी फ़ोटो हमें मिलेगी नहीं? अरे, आंदोलन, ब्लास्ट, आगजनी, मारपीट, गुंडागर्दी, घेराव, मोर्चा, हड़ताल, बंद... तू तू मैं..मैं... हमेशा चलती ही रहती है, रहेंगी भी. हमें हज़ारों फ़ोटो मिलेंगी. केवल हमें सावधानी बरतनी पड़ेगी कि सजीव पीड़ित की फ़ोटो न हों, मुर्दे की हों... मुर्दे कभी मानवाधिकार का उपयोग कर रॉयल्टी मांगने नहीं आयेंगे...”

आज की चाय दोनों को काफी फीकी लगी.

✍️ गंधबहार, १ अयोध्यानगरी,

आशाशिवनगर, कराड,

ज़ि : सातारा-४१५११०



आमने-सामने

## 'संवेदना और अनुभूति की पूंजी है सृजन'

✍ जयप्रकाश त्रिपाठी

बहुत बार होता है कि पाठकों से लेखक केवल अपनी रचनाओं के माध्यम से ही बात नहीं करना चाहता बल्कि सीधे पाठक के सामने अपने मन की गांठ खोलना चाहता है, लेखक और पाठक के बीच की दीवार खत्म करने का प्रयास है यह स्तंभ, 'आमने-सामने'. अब तक मिथिलेश्वर, बलराम, (स्व.) प्रो. कृष्ण कमलेश, कृष्ण कुमार चंचल, संजीव, (स्व.) सुनील कौशिश, डॉ. बटरोही, राजेश जैन, डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुंदन सिंह परिहार, अवधेश श्रीवास्तव, श्रीनाथ, राम सुरेश, विजय, विकेश निझावन, नरेंद्र निर्मोही, पुत्री सिंह, श्याम गोविंद, प्रबोध कुमार गोविल, स्वयं प्रकाश, मणिका मोहिनी, राजकुमार गौतम, डॉ. रमेश उपाध्याय, सिद्धेश, डॉ. हरिमोहन, डॉ. दामोदर खड़से, रमेश नीलकमल, चंद्रमोहन प्रधान, डॉ. अरविंद, (स्व.) सुमन सरीन, डॉ. फूलचंद मानव, मैत्रेयी पुष्पा, तेजेंद्र शर्मा, हरीश पाठक, जितेन ठाकुर, अशोक 'अंजुम', राजेंद्र आहुति, आलोक भट्टाचार्य, डॉ. रूपसिंह चंदेल, दिनेश चंद्र दुबे, डॉ. कृष्णा अग्रिहोत्री, जयनंदन, सत्यप्रकाश, संतोष श्रीवास्तव, उषा भटनागर, प्रमिला वर्मा, डॉ. गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, सुधा अरोड़ा, पं. किरण मिश्र, डॉ. तेज सिंह, डॉ. देवेंद्र सिंह, राकेश कुमार सिंह, रमेश कपूर, डॉ. उर्मिला शिरीष, रामनाथ शिवेंद्र, अलका अग्रवाल सिगतिया, संजीव निगम, सूरज प्रकाश, रामदेव सिंह, मंगला रामचंद्रन, प्रकाश श्रीवास्तव, सलाम बिन रजाक, मदन मोहन 'उपेंद्र', भोला पंडित 'प्रणयी', महावीर रवांला, गोवर्धन यादव, डॉ. विद्याभूषण, नूर मुहम्मद 'नूर', डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम', सुरेंद्र रघुवंशी, राजेंद्र वर्मा, डॉ. सेराज खान 'बातिश', डॉ. शिव ओम 'अंबर', कृष्ण सुकुमार, सुभाष नीरव, हस्तीमल 'हस्ती', कपिल कुमार, नरेंद्र कौर छाबड़ा, आचार्य ओम प्रकाश मिश्र 'कंचन', कुंवर प्रेमिल, डॉ. दिनेश पाठक 'शशि', डॉ. स्वाति तिवारी, डॉ. किशोर काबरा, मुकेश शर्मा, डॉ. निरुपमा राय, सैली बलजीत, पलाश विश्वास, डॉ. रमाकांत शर्मा, हितेश व्यास, डॉ. वासुदेव, दिलीप भाटिया, माला वर्मा, डॉ. सुरेंद्र गुप्त, सविता बजाज और डॉ. विवेक द्विवेदी से आपका आमना-सामना हो चुका है. इस अंक में प्रस्तुत है जयप्रकाश त्रिपाठी की आत्मरचना.

**आ**ज लगभग चार बजे के आस-पास जब मैं फ़िल्मी परम-पुरुष सलमान खान की सज़ा पर विभिन्न चैनलों पर अतिवादी कवरेज देखकर स्तब्ध था उसी दौरान अग्रज डॉ. माधव सक्सेना 'अरविंद' का फ़ोन आया और उस पर एक आदेश मिश्रित आग्रह कि इस बार मुझे 'आमने-सामने' स्तंभ के लिए स्व-वृत्तांत लिखना है. क्षण भर के लिए मैं पशोपेश में पड़ गया. पर बातचीत के दौरान ही बिना किसी किंतु परंतु के 'हां' कह दिया और सोचने लगा कि कहां से श्रीगणेश करूं. सहसा मन में यह विचार प्रस्फुटित हुआ कि व्यक्ति के जीवन की स्मृति-मंजूषा ही उसके भविष्य और वर्तमान को परिमार्जित कर उसे अतीत का बोध कराती है. अतएव अपने आप को परिमार्जित करने का एक अनूठा अवसर मानकर मैं कथाबिंब के सुधी पाठकों के सामने परत दर परत खुलने के लिए तत्पर हो गया. इसी विचारमंथन में जीवन के साथ-साथ सृजन-यात्रा के कुछ

कहे-अनकहे चित्र सजीव हो गये. अतीत के आइने में अंकित प्रतिबिंबों को उकेरना शुरू किया तब एक बार फिर लगा कि उनको लिपिबद्ध करना असाध्य तो नहीं पर श्रमसाध्य ज़रूर है. आज जहां कॉरपोरेट कल्चर में बकायादा इस बात पर बल दिया जाता है कि अपने आप को प्रोजेक्ट करिए, यानी अपनी तारीफ़ इस कदर कीजिए ताकि लोगों के मन में आपके व्यक्तित्व की शान चढ़ जाये. वहीं साहित्यिक दुनिया में हमेशा समीक्षात्मक विचारों का जिसमें गुण-दोष दोनों समाहित हों का स्वागत किया गया. मेरी यह आत्मरचना भी इसी अवधारणा से अनुप्राणित है.

मुझे आज भी इस बात का अहसास है कि शायद बचपन में साहित्य व अभिनय कला के प्रति अभिरुचि व जिज्ञासा ने मेरे अंतर्मन में कदाचित विद्यमान साहित्य की भावर्मियों को तरंगित करने में अहम भूमिका निभायी. बचपन में कविताओं का सस्वर पाठ, गांव की रामलीला के मंचांकन



२७ जनवरी १९५७;  
केमिकल इंजीनियरिंग (डिप्लोमा).

गत तीन दशकों से रचनाधर्मी होने का मोह, आकाशवाणी मुंबई तथा दूरदर्शन से रचनाओं का प्रसारण, काव्यमंचों से काव्यपाठ एवं मंच संचालन, राष्ट्रीय स्तर पर कई वैज्ञानिक व साहित्यिक संगोष्ठियों का संयोजन, संचालन एवं वार्ताओं का प्रस्तुतीकरण.

: पुरस्कार :

परमाणु ऊर्जा विभाग, भारत सरकार द्वारा 'राजभाषा भूषण' सम्मान, साहित्यिक संस्था 'श्रुति संवाद' द्वारा 'भाषा गौरव' पुरस्कार, राजस्थान सांस्कृतिक मंडल, तारापुर द्वारा 'काव्य सारथी', पुरस्कार.

: संप्रति :

वरिष्ठ वैज्ञानिक अधिकारी (सेवानिवृत्त) भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई, अध्यक्ष, 'शब्द सेतु'.

हेतु पद्यात्मक संवाद लिखना तथा प्रस्तुत करना मुझे अपने पिता से विरासत के रूप में मिला था. मुझे याद है कि १२-१३ साल की उम्र में एक बार मैंने गांव की रामलीला में जिसे देखने के लिए दूर-दूर से लोग आते थे, परशुराम की भूमिका निभायी थी तब मेरे अभिनय से खुश होकर गांव वालों ने मुझे कंधों पर उठा लिया था, रुपयों की माला बनाकर पहनायी थी. मेरे बाल हृदय को कला और साहित्य की ओर आकर्षित करने के लिए यह उल्लास पर्याप्त था. तदंतर मैं इससे जुड़ता गया.

मेरा जन्म गोरखपुर जनपद के एक गांव में, सुसंपन्न परिवार में हुआ. मेरे पिता की गणना क्षेत्र के संप्रभू व सुशिक्षित लोगों में होती थी. वे उस समय के स्नातक थे जब पूरे जनपद में इक्का-दुक्का लोगों के पास ही डिग्रियां थीं. नानाजी के कहने पर उन्होंने एक स्थानीय इंटर कालेज में

लगभग ३५ वर्ष तक अध्यापन का कार्य किया और अपने अंतिम संकल्प के रूप में गांव में एक विद्यालय की स्थापना की जिसमें आज लगभग सात सौ बच्चे अध्ययनरत हैं. पिताजी की धैर्यशीलता, गांभीर्यता व वाकपटुता का कुछ अंश संस्कार में मिला. मां पढ़ी-लिखी नहीं थीं. लेकिन अपने आप में सुसंस्कारिता की कुंजी थीं. सहिष्णुता और धर्म पारायणता उनके शालीन व्यक्तित्व के अहम हिस्से थे. गांव के कई गरीब परिवारों की बच्चियों की शादियां करवायीं व कन्यादान किये. उन्हें घर-गृहस्थी के व्यवस्थापन में महारत हासिल थी. हम लोगों को अनुशासित रखने से लेकर, पढ़ाई-लिखाई तथा शादी-ब्याह की चिंता उन्हें पिताजी से कहीं अधिक थी. वह हमेशा इसके लिए प्रयासरत रहती थीं कि मेरे बच्चों को किसी चीज की कमी न हो. उन्होंने हमेशा मानवता और उदारता को प्राथमिकता दी. आज भी उनकी ममता और व्यक्तित्व को याद कर आंखें नम हो जाती हैं. कुल मिलाकर बचपन के दिन बहुत सुखद थे. जिसका बयां करने पर अपने बच्चे चिढ़ जाते हैं, कहते हैं कि बता के क्या फायदा हमें तो वैसा कुछ भी नहीं मिला.

घर में गीताप्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित 'कल्याण' का विशेषांक नियमित आता था जिसका अवगाहन मेरे लिए साहित्यिक संस्कारों को आत्मसात करने में एक महत्वपूर्ण उपादेय साबित हुआ. इन विशेषांकों में प्रकाशित लेखों में चिंतन की उत्कृष्टता, भाषा की गरिमा एवं प्रवाह ने जीवन मूल्यों और विचारों को पोषित करने का काम किया. कल्याण के अलावा गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित 'श्रीरामचरित मानस' भी मेरी साहित्यिक साधना का महत्वपूर्ण अवदान बना. मानव जीवन के यथार्थ से संपृक्त 'मानस' के पारायण द्वारा जीवन के हर पहलू को समझने का प्रसाद प्राप्त हुआ. इसमें सन्निरह आध्यात्म व साहित्य ने मानव जीवन के यथार्थ के साथ-साथ व्यवहारिक ज्ञान को भी सांद्रता प्रदान की. इस ग्रंथ को कई बार आद्योपांत पढ़ने के बाद मैंने यह महसूस किया है कि कोई भी रचनाकार भारतीय दर्शन व आध्यात्म का मज्जन किये बिना सृजन की ऊंचाइयों को नहीं छू सकता.

छात्र जीवन में स्कूल और कॉलेज में आयोजित विविध सांस्कृतिक कार्यक्रमों तथा प्रतियोगिताओं में भाग लेने का अवसर मिला. वाणी को प्रोत्साहन मिला और मेरी अभिरुचि निरंतर बढ़ती रही. लेकिन इस अभिरुचि को उस



दिन ब्रेक लग गया जिस दिन यू. पी. बोर्ड की बारहवीं की परीक्षा का परिणाम घोषित हुआ और पिताजी की उम्मीद के मुताबिक मेरे अंक नहीं आये. पिताजी जो सामान्यतः बहुत कम डांटते थे. कह दिया कि पढ़ाई की ओर ध्यान दो भाषणबाजी और तुकबंदी से कुछ नहीं होगा. भविष्य पर ध्यान दो. एक बार जब समय हाथ से निकल जाता है तब दोबारा लौट के नहीं आता. उसी दिन मैंने अपनी कच्ची-पक्की रचनाओं से भरी नोटबुक को खुद ही फाड़कर फेंक दिया और लगभग पांच साल तक सर्जना से पूरी तरह विमुख रहा.

कानपुर से केमिकल इंजीनियरिंग की पढ़ाई पूरी करने के बाद सन १९७७ में देश के सर्वप्रतिष्ठित वैज्ञानिक संस्थान भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई में नियुक्ति हुई. एक वर्ष के प्रशिक्षण के बाद मेरा प्रारंभिक कार्यस्थल मुंबई से लगभग सौ किलोमीटर दूर तारापुर सुनिश्चित हुआ. इसी दौरान कुछ वरिष्ठ सहयोगियों के संसर्ग ने अंतर्मन में विद्यमान साहित्य को एक बार पुनः जाग्रत कर दिया. एक दिन मेरे बॉस ने अपने बंगले के अहाते में एक काव्यगोष्ठी आयोजित की और मुझे भी उसमें शामिल होने का आमंत्रण मिला. बड़े संकोच के साथ मैंने भी अपनी एक रचना जो मुझे याद थी प्रस्तुत की और उसके बाद जो अतिशय प्रतिसाद मिला उससे मेरे सृजन को एक नयी ऊर्जा मिल गयी. अंतस में विद्यमान भाव-लहरियां तरंगित हो उठीं. मैं धीरे-धीरे रचनाधर्मिता में रमने लगा. नौकरी के लगभग दो साल बाद सन १९७९ में परिणय सूत्र में बंध गया. सौभाग्य से जीवनसंगिनी भी ऐसी मिली जिसके मन में कला-साहित्य की छाप बचपन में ही पड़ गयी थी. मेरे ससुरजी क्षेत्र के जाने माने गायक थे. तुलसी, सूर, कबीर के भजनों के अलावा स्वरचित भजनों और लोकगीतों से समा बांध देते थे. यह सब कुछ वह सिर्फ अपने आनंद और शौक के लिए करते थे. उनकी प्रतिष्ठा का आलम यह था कि लोग सम्मान से उन्हें गुरुजी कहते थे.

तारापुर में मेरी साहित्यिक गतिविधियां तेज हो गयीं. हर महीने काव्य गोष्ठी होने लगी और एक साहित्यिक परिवेश निर्मित हो गया. जो मुझ जैसे रचनाकार के लिए किसी वरदान से कम नहीं था. प्रथम बार सन १९९० में, तारापुर में एक विराट कवि सम्मेलन का आयोजन हुआ जिसमें डॉ. राम मनोहर त्रिपाठी, विश्वनाथ सचदेव, सूर्यभान

## गीत

जय प्रकाश त्रिपाठी

है थोड़ा बहुत इस नगरी में  
पर अंतस में तन्हाई है  
लोग यहां क्या समझेंगे  
इस गम की क्या गहराई है ?

मुस्कानों के भी सौंदे हैं  
मानव ने मानव रौंदे हैं,  
हर घर की अजब कहानी है  
मानवता रहित घरौंदे हैं.  
रंगीन बहुत है जिस्म मगर,

आंखें सबकी पथराई हैं  
बस रोबोटिक हर रिश्ता है  
सब कुछ मंडी में बिकता है  
अब चेमानी है गीत, गज़ल  
बस अरबखारी समझौता है.  
यहां हर ऊंचाई चीनी है,

लंबी केवल परछाई है  
धड़कन है बस घड़ियालों में  
नकलीपन है गुलदानों में  
भीतर बाहर तो क्रंदन है  
बस फूल पनपते तालों में  
बाहर तो नित्य दीवाली है,  
पर घर की लौ मुड़झाई है.

गुप्त, यज्ञ शर्मा, सुमन सरिन, आलोक भट्टाचार्य आदि के साथ काव्यपाठ का सुअवसर मिला. इस आयोजन से प्रोत्साहन के साथ-साथ मंचीय तहजीब का भान हुआ. मेरी लेखनी काव्य विधा में अनुरक्त हो गयी. कविता की समझ और शिल्प में पैनापन आ गया. मंचों पर भरपूर मान-सम्मान मिलने लगा. 'शब्द सेतु' नामक साहित्यिक संस्था का गठन किया जिसके बैनर के नीचे साहित्यिक संवाद, गोष्ठियां, कवि सम्मेलन निरंतर आयोजित होते रहे. इसका दुष्प्रभाव कुछ यूं हुआ कि धर्मपत्नी ने भी लेखनी पकड़ ली. हुआ यूं कि एक बार प्रो. नंदलाल पाठक घर पर आये हुए थे. उस समय गोष्ठी के दौरान पत्नी ने अपनी कुछ रचनाएं जिनके

बारे में मुझे भी लेशमात्र जानकारी नहीं थीं उन्हें सुनायीं. जिन्हें सुनने के बाद पाठक जी ने पूछा प्रेमलता यह तुमने लिखा है? श्रीमती जी के 'हां' कहने पर उन्होंने कहा, शायद तुम्हें पता नहीं तुम्हारे अंदर कितनी प्रतिभा है. तुम श्रेष्ठ कवयित्री बनने के लिए जन्मी हो. तुम चाहो तो मैं तुम्हारा गुरु बनने को तैयार हूं. उसी दिन से पाठकजी को अपना गुरु मानकर गीत, ग़ज़ल और कहानियां लिखने लगीं तथा अपने आप को शालीन मंचों तक सीमित रखा. गत कई वर्षों से आकाशवाणी मुंबई से श्रीमतीजी की कहानियां निरंतर प्रसारित होती रहती हैं.

इस बीच मैं विभाग की हिंदी गतिविधियों से जुड़ गया. यद्यपि मेरा कार्यस्थल तारापुर था फिर भी हिंदी की संवाहिका के रूप में केंद्र के मुंबई कार्यालय में कार्यरत, 'हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद' तथा 'केंद्रीय सचिवालय परिषद' द्वारा आयोजित कार्यक्रमों में भाग लेना मेरी प्राथमिकताओं में शामिल हो गया. कई प्रतियोगिताओं में लगातार पुरस्कार प्राप्त करने का सौभाग्य मिला. इन कार्यक्रमों के दौरान भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई में हिंदी कार्य से जुड़े कई पुरोधाओं से परिचय एवं साक्षात्कार हुआ. उन दिनों केंद्र में होली के अवसर पर आयोजित कवि सम्मेलन का बड़ा क्रेज़ था. केंद्र के वरिष्ठ वैज्ञानिक, अधिकारी और कर्मचारी इस कार्यक्रम में पूरी उत्सुकता व उत्साह के साथ उपस्थित रहते थे. पहली बार मुझे इस कार्यक्रम में शिरकत करने का आमंत्रण मिला और आयोजन समिति के निर्णयानुसार कवि सम्मेलन के संचालन की ज़िम्मेदारी भी मेरे ऊपर थी. मेरे लिए भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र में स्थित भव्य ऑडिटोरियम के विराट मंच से कुछ कहने का यह पहला मौक़ा था. मां वाणी की कृपा से यह कार्यक्रम इतना जम गया कि मेरे सम्मान में सभागार में देर तक तालियां बजती रहीं जिसकी गूँज आज भी मेरे स्मृति पटल पर अंकित है. कई शीर्ष अधिकारियों ने व्यक्तिगत रूप से बधाई दी. उस समय सभागार में विद्यमान 'हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद' तथा 'केंद्रीय सचिवालय हिंदी परिषद' के सक्रिय सदस्यों ने आग्रह किया कि आप दोनों संस्थाओं से जुड़ जाइए. संयोग से दिसंबर १९९८ में मेरा स्थानांतरण मुंबई हो गया. लगभग दो महीने बाद मैं सपरिवार परमाणु ऊर्जा आवासीय परिसर अणुशक्तिनगर में रहने के लिए भी आ गया. मुंबई आने के बाद केंद्र की दोनों ही स्वयं सेवी संस्थाओं में काम

करने का अनुभव मिला. प्रगत विज्ञान के इस विशिष्ट संस्थान के कई वरिष्ठ एवं विश्रुत वैज्ञानिकों का सान्निध्य मिला जिन्हें विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के साथ-साथ हिंदी में भी महारत हासिल थी. विशेष रूप से डॉ. माधव सक्सेना, डॉ. सीताराम द्विवेदी, डॉ. देवकी नंदन, डॉ. शिव प्रकाश गर्ग, रमेश चंद्र पंत, डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल तथा स्मृतिशेष श्री देवदत्त बाजपेयी, डॉ. सत्य नारायण त्रिपाठी एवं डॉ. राज नारायण पांडेय का नाम अंतस पटल पर अभी भी दर्ज है. हिंदी के प्रति इनका समर्पण, संकल्प व कार्य करने की शैली सदैव प्रेरणा और प्रोत्साहन देती रही. लगातार बारह वर्षों तक हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद के सचिव के रूप में कार्य किया. केंद्र से निकलने वाली पत्रिका 'वैज्ञानिक' के संपादन में भी प्रमुख भूमिका निभायी. इन दायित्वों का निर्वहन करते हुए केंद्र में ही नहीं बल्कि राष्ट्रीय फलक पर विज्ञान भावना के नये आयाम स्थापित करने में पूरी तरह क्रियाशील रहा. राजभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार में उल्लेखनीय योगदान के फलस्वरूप वर्ष २००६ में परमाणु ऊर्जा विभाग, भारत सरकार द्वारा अखिल भारतीय स्तर पर 'राजभाषा भूषण' सम्मान से पुरस्कृत किया गया.

डॉ. माधव सक्सेना से हमारी पहली मुलाकात मुंबई के उपनगर बोरीवली में आयोजित एक साहित्यिक कार्यक्रम में हुई. मैं और श्री देवदत्त बाजपेयी तारापुर से इसमें हिस्सा लेने आये हुए थे. परिचय के दौरान जब मुझे यह पता चला कि डॉ. सक्सेना अकेले अपने बल पर गत कई दशकों से 'कथाबिंब' जिसकी प्रति उस समय मेरे हाथ में थी, जैसी स्तरीय पत्रिका निकाल रहे हैं. उसी समय मुझे उनकी साहित्यिक निष्ठा का अंदाज़ा लग गया था. मुंबई आ जाने के बाद हमारा पूर्व परिचय भातृवत् रिश्ते में बदल गया. समय निकाल कर एक दूसरे से मिलना तथा साहित्यिक चर्चा हमारी साप्ताहिक समय सारिणी में शामिल हो गयी. हमारी आत्मीयता निरंतर प्रगाढ़ होती चली गयी. वर्ष २००१ के 'कथाबिंब' के अंक में अपना नाम देखकर मैं चकित रह गया. मुझे नहीं मालूम किस पारखी नज़र की वजह से डॉ. सक्सेना ने मुझे कथाबिंब का एक सिपाही बना दिया. पर मैं तो इनके बेबाकीपन, संघर्षशीलता, लगन और निष्ठा का आज भी कायल हूँ. अग्रज के रूप में मैंने उनका कितना सम्मान किया उसका आंकलन मेरे अधिकार क्षेत्र में नहीं है. हां, इतना अवश्य कह सकता हूँ कि उन्होंने मुझे सदैव

अनुभवत स्नेह दिया. मेरे अणुशक्तिनगर, मुंबई में आने के बाद यहां भी हर माह काव्यगोष्ठियां एवं साहित्यिक संवाद का सिलसिला शुरू हो गया. यदि मैं इस साहित्यिक क्रिया का प्रमुख कारक था तो डॉ. माधव सक्सेना इसके प्रमुख उत्प्रेरक थे. ये गोष्ठियां पारिवारिक मौहल में बिना किसी औपचारिकता के किंतु संजीदगी के साथ बारी-बारी से हम सभी कवि मित्रों के घरों में होती थीं. ऐसी ही एक गोष्ठी में कवि मित्रों की संख्या तीस से अधिक हो गयी तब डॉ. माधव सक्सेना ने बड़े ही विनोदपूर्ण ढंग से कहा था कि 'यहां तो घर-घर डायरियां हैं.' जिसे सुनकर मौजूद पूरी कविमंडली खिलखिला उठी थी. आज भी मैं इस उद्धरण का प्रयोग कदाचित्त मंचों से करता रहता हूं. इसी बीच एक साहित्यिक प्रयोजन के लिए डॉ. सक्सेना एक दिन मुझे विवेकानंद इंजीनियरिंग कॉलेज लेकर आये. वहां कॉलेज की निदेशिका डॉ. (कु.) मिथलेश सक्सेना से परिचय हुआ. उस साहित्यिक कार्य पर चर्चा हुई जिसके लिए हम वहां गये थे. मैडम को नयी पीढ़ी में राष्ट्रीय भावना जाग्रत करने के लिए एक प्रेरणादायी रचना चाहिए थी जिसको केंद्र में रखकर इंजीनियरिंग कॉलेज के छात्रों द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किया जाना था. इसकी आयोजन की अहमियत इस नाते से बढ़ गयी थी क्योंकि यह कार्यक्रम मुंबई की कई नामी हस्तियों की मौजूदगी में संपन्न होना था. दो दिन बाद रचना के साथ मैं उनसे अकेले मिलने गया. उस दिन माधव जी जानबूझकर मेरे साथ में नहीं थे. चूंकि मैडम पूर्व में कई कवि-मित्रों की रचनाएं अस्वीकृत कर चुकी थीं. इसलिए वे संशंकित थे कि कहीं मेरी रचना भी अस्वीकृत हो गयी तो मुझसे अधिक उनको खराब लगेगा. पर संयोग से मैडम को मेरी रचना बहुत अच्छी लगी. उस समय मैं अत्यंत प्रमुदित हो गया था जब उन्होंने यह कहा कि, 'जो मैं चाहती थी, मुझे मिल गया.' इस प्रतिसाद के बाद उनसे लंबी बातचीत हुई. हांलाकि तब तक मुझे यह नहीं मालूम था कि जिस महिला शक्ति से वार्तालाप कर रहा हूं वह डॉ. माधव सक्सेना की सहोदरा हैं. वैसे तो पहली मुलाकात में ही मैडम की भावभंगिमा और संवाद से मुझे उनकी ज्ञान सरिता की गहराई का भान हो गया था. पर उस दिन सादगी, अनुशासन, ईमानदारी, कर्तव्यनिष्ठा से अलंकृत उनके विलक्षण व्यक्तित्व के बारे में जानकर सुखद आश्चर्य का अनुभव हुआ. तभी से मेरे मन में उनके प्रति जो सम्मान का भाव जगा वह आज

## गज़ल

### जय प्रकाश त्रिपाठी

नित्य नये फरमान हैं हम ।  
सरकारी सामान हैं हम ॥  
ओढ़े और बिछाये जाते ।  
घिसी-पिटी पहचान हैं हम ॥  
रात सिमटते चुबह बिखरते ।  
खुद से भी अंजान हैं हम ॥  
बीच शहर के चौराहे पर ।  
खड़े हुए मेहमान हैं हम ॥  
सिले हुए पैबंदों जैसे ।  
झेल रहे अपमान हैं हम ॥  
मंदिर-मस्जिद की चौखट पर ।  
खून से लथपथ जान हैं हम ॥  
ऊंची-ऊंची दुकानों के ।  
बस फीके पकवान हैं हम ॥

भी कायम है. मैं मैडम के लगभग प्रत्येक सांस्कृतिक कार्यक्रमों का हिस्सा बन गया. मेरे प्रति उनका विश्वास कुछ इस कदर है कि कई बार मेरी वजह से उनको कार्यक्रमों की तिथियां बदलनी पड़ीं. सेवानिवृत्त के बाद मैडम ने 'संस्कृति संरक्षण संस्था' के नाम से एक ट्रस्ट का गठन किया जिसके बैनर के नीचे नयी पीढ़ी में संस्कृति, साहित्य, संगीत, कला की भावना को उद्वेलित करने का शुभ संकल्प अनवरत फलित हो रहा है. भारतीय संस्कृति और स्वस्थ परंपराओं को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए प्रतिबद्ध इस संस्था से मैं भी संबद्ध हूं.

मायानगरी मुंबई में कई कवि-लेखक संपर्क में आये. प्रो. नंदलाल पाठक, प्रो. रामजी तिवारी, शैल चतुर्वेदी, हुल्लड़ मुरादाबादी, डॉ. सुधाकर मिश्र, मधुकर गौड़, किरण मिश्र, हस्तीमल 'हस्ती', वीनू महेंद्र आदि से समुचित स्नेह और सौहार्द मिला. कवि सम्मेलनों में भाग लेने के अनेक अवसर मिले, मान-सम्मान मिला तथा एक स्तरीय साहित्यिक संचालक के रूप में प्रतिष्ठा मिली. कविता के अतिरिक्त लेख, निबंध, नृत्य नाटिकाएं तथा समीक्षाएं लिखीं जो देश के लब्ध प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रकाशित

हई. मुझ जैसे वैज्ञानिक विधा के व्यक्ति के लिए साहित्य के क्षेत्र में इतना कुछ कर पाना आसान नहीं था. लेकिन सृजनशीलता की प्रवृत्ति और लोगों के प्रोत्साहन ने सृजन-संस्कारों को धारदार बना दिया. सोचा था सेवानिवृत्त होने के बाद बहुत समय मिलेगा तो कुछ बेहतर लिखने का सक्रिय प्रयास करूंगा. लेकिन 'गृह कारज नाना जंजाला' तो कुछ अधिक ही व्यस्त हो गया हूं. किंतु मन के भीतर सृजन की प्रतिबद्धता अब भी शेष है. मेरा मानना है कि 'अंतस में अनुभूतियों का उद्वेलन जब पराकाष्ठा पर होता है तब उन्हें शब्दों में पिरोये बिना नहीं रह पाता रचनाकार. यही अनुभूतियां ही मन की दशाओं को परिचालित कर स्नेह, श्रद्धा, आक्रोश आदि विविध रूपों में ढल जाती हैं.' इस प्रक्रिया में साहित्य पारस पत्थर की तरह कवि की संवेदनाओं को निरंतर निखारता रहता है. संवेदना जितनी निखरती जाती है रचना और रचनाकार का वजूद भी बढ़ता जाता है. कोई भी रचनाकार जन मानस के अंतस को तब तक नहीं स्पर्श कर पाता जब उसकी रचनाओं में पवित्रता का भाव और यथार्थ

का बोध नहीं होता.

अंत में महाराष्ट्र की इस धरती को नमन जिसने रोजी-रोटी के साथ मेरी सर्जनात्मकता को नयी उंचाई प्रदान की तथा साथ में उन सुधी श्रोताओं व पाठकों के प्रति हृदय से आभार जिन्होंने भरपूर स्नेह और सम्मान दिया.

✍ ७१-७६, ए एच-४ केंद्रीय विहार,  
सेक्टर-११, खारघर, नवी मुंबई (महा.)  
मो.: ९८२०४४०६१७.

लघुकथा

## एक अकेला

✍ भवानी सिंह

एक अखबार ने ही नहीं, शहर के सभी अखबारों ने पन्ने रंगे थे. मेरे अखबार ने भी पूरे पृष्ठ पर उसका नहीं, उसके खून के रंगीन चित्र छापे थे, अनेक चित्र. वह जख्मी होने के बावजूद हिम्मत रहने तक बदनवास हर द्वार की ओर लपका-भागा, पर कोई नहीं आया सहायता को. एक द्वार से तो धक्का भी दिया गया - जा भाग - और कहीं जाकर मर. यह दृश्य था एक सार्वजनिक सरकारी कार्यालय का. तनखा लेने का दिन था. अतः सभी कर्मचारी भी उपस्थित थे. हर कमरे में अन्य दिनों की अपेक्षा आज अधिक उपस्थिति थी. सभी कक्ष और बरामदे भी काम से आने वालों से खचाखच भरे थे, खून से लथ-पथ देख नोटिस तो सभी ने लिया पर किसी ने उसकी सहायता नहीं की, मारने वालों से बचाने के लिए ही नहीं, बल्कि उस लहुलुहान को अस्पताल पहुंचाने में भी नहीं. यदि समय पर उसे अस्पताल पहुंचा दिया जाता तो शायद वह अपने नन्हें मुन्नों के भाग्य से बच भी जाता.

किसी के सहायता नहीं करने पर मैं आज दुखी नहीं हूं. सब्र कर लिया है - मारने वाले सूदखोर जो थे. जब एक सूदखोर देश दूसरे देश को सरे आम बर्बाद कर सकता है, कत्ल कर सकता है तथा बाकी के देश ताली बजाते हुए देखते रह सकते हैं, तो मैं एक छोटे से कार्यालय के कर्मचारियों द्वारा सूदखोरों द्वारा मारे गये शिकार की सहायता नहीं करने पर क्यों गरियाऊं.

आखिर पैसे वाले से हर आदमी डरता है और आंखें मूंद लेता है. चाहे वह एक आदमी को मारे या पूरे देश को. इसमें आश्चर्य कैसा?

✍ १६८, शिवनाथ नगर,  
चौपासनी रोड, जोधपुर.

## गज़ल

✍ डॉ गोपाल राजगोपाल

आसमां भी इम्तिहां लेने खड़ा है ।  
फिर ज़मीं की कोख में सूखा पड़ा है ॥  
वो न कान्हा वो न नट है आदमी है ।  
एक पग पे वो यहां कब से खड़ा है ॥  
एक जीवन तुम रहे जीते मजे से ।  
एक जीवन को यहां जीना पड़ा है ॥  
रोज चल कर दूरियों को पाटता हूं ।  
बीच का ये फ़ासला कितना बड़ा है ॥  
इम्तिहां है इम्तिहां है इम्तिहां है ।  
जो न चाहा था वही लिखना पड़ा है ॥  
इक तिरे दीदार से महरूम हूं मैं ।  
और तू दीवार से चिपका खड़ा है ॥

✍ २२१५, सरदारपुरा,  
पेट्रोल पंप के पीछे,

उदयपुर (राज.)- ३१३००१.

मो. : ९४१४३४२५२३/९००१२९५५२३



## आपकी रचना को कोई क्यों पढ़े ?

✍ यज्ञ शर्मा

(यज्ञ शर्मा से मधु अरोड़ा की 'कथाबिंब' के लिए बातचीत.)

### ● आपने अपनी शिक्षा विज्ञान में प्राप्त की, हिंदी में लेखन के प्रति रुझान कैसे हुआ?

जी हां मधु जी, मैं विज्ञान का विद्यार्थी रहा हूँ. मैंने मुंबई विश्वविद्यालय से भूगर्भ विज्ञान में एम. एस सी. की है. जैसा कि आप जानती हैं, मुंबई विश्वविद्यालय में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी है. लेकिन, मेरी मातृभाषा हिंदी है और मैंने हाई स्कूल मथुरा से किया था, जहां पढ़ाई का माध्यम हिंदी था. तो, मेरी मातृभाषा या यों कहें कि कुदरती भाषा हिंदी है. इसलिए, मेरा हिंदी में लिखना स्वाभाविक है. वैसे, मुंबई में शिक्षा प्राप्त करने के कारण मैं अंग्रेजी भी ठीक-ठाक जानता हूँ. और मैंने अंग्रेजी में भी लिखा है. मैं काफ़ी समय तक 'अमर चित्र कथा' से जुड़ा रहा था. 'अमर चित्र कथा' की सारी स्क्रिप्ट मैंने अंग्रेजी में ही लिखीं. तो, मैं अंग्रेजी में लिख लेता हूँ, लेकिन कभी-कभी अंग्रेजी में लिखने के लिए सही शब्द खोजने के लिए जूझना पड़ता है. हिंदी में सही शब्द खोजने में मुझे अकसर परेशानी नहीं होती.

( वैसे, यह उत्तर मैं अलग तरह से भी दे सकता था. मैं हिंदी की सेवा करने का दावा कर सकता था. हिंदी को उसका खोया हुआ गौरव वापस दिलाने का अपना छोटा-सा प्रयास भी कह सकता था, वगैरा, वगैरा. यदि, आपको यह दूसरा उत्तर अधिक उचित लगे, तो इसे ही सही उत्तर मानें.)

### ● लेखन में प्रचलित विधाओं – कविता, कहानी, उपन्यास को छोड़कर व्यंग्य विधा को ही क्यों चुना?

मुझसे एक-दो बार पूछा गया है कि मैं कहानियां क्यों नहीं लिखता? कहानियां न लिखने का कारण शायद यह है कि मैं स्वभाव से भावुक नहीं हूँ. कहानी लिखने के लिए मन में थोड़ी भावुकता होना आवश्यक है. मेरा मानना है कि हर व्यक्ति को वही लिखना चाहिए जो उसके स्वभाव के अनुरूप हो. तभी लेखन स्वाभाविक बन पड़ेगा. वरना तो लेखन में शब्दों का खेल भी बहुत होता है. आपने भी गौर किया होगा, बहुत-से लोग क्रलम के साथ खेलते हैं.

मैंने व्यंग्य लिखना इसलिए चुना, क्योंकि मेरे ख्याल से व्यंजना मेरे स्वभाव में है और वह मेरी सामान्य बातचीत

में भी झलकती है. मगर मैंने व्यंग्य लिखना बहुत देर से शुरू किया, क्योंकि अपना स्वभाव मेरी समझ में बहुत देर से आया. मेरा व्यंग्य लिखना शुरू करने से काफ़ी पहले मेरे कुछ मित्रों ने सुझाव भी दिया था कि मुझे व्यंग्य लिखना चाहिए. विश्वनाथ सचदेव ने तो कई बार कहा. लेकिन, मैंने इस सुझाव पर गौर नहीं किया. मैंने पहला व्यंग्य इमर्जेंसी में लिखा था — “असली किस्सा दिल्ली की भटियारिन का.” मैंने वह रचना पारंपरिक नौटंकी शैली में लिखी थी. उसमें नौटंकी के सभी तत्त्व थे — मैंने उसे वंदना से शुरू किया था, उसमें सूत्रधार था, संवादों में जगह-जगह पर शेर और दोहों जैसी चीजें भी थीं. मैंने वह रचना भारती जी को दिखायी थी. (तब तक मैं धर्मयुग में थोड़ा-बहुत छपने लगा था). भारती जी ने मेरी रचना देखी और बोले, “इसे नहीं छपा जा सकता. पर तुम इसी शैली में कुछ और लिख कर लाओ.” मुझे डोर मिल गयी, मैंने पकड़ ली. फिर, मैंने नौटंकी शैली में कई रचनाएं लिखीं जो भारती जी ने धर्मयुग में छपीं. वैसे, मैंने धर्मयुग में केवल नौटंकी शैली में नहीं लिखा.

### ● आप कविताएं भी बहुत अच्छी लिखते हैं. फिर आजकल आपकी कविताएं पढ़ने को नहीं मिल रहीं, कविताओं के इस प्रकार हाशिये पर चले जाने का ख़ास कारण?

यह प्रश्न मेरी दुखती रग पर रखी उंगली की तरह है. लगभग सभी रचनाकारों की तरह मैंने भी लिखना कविता से ही शुरू किया था. तब मैं इंटरमीडिएट में पढ़ता था. मेरा एक मुस्लिम सहपाठी कक्षा में दीवान-ए-ग़ालिब लेकर आता था. उस उम्र में उर्दू शायरी जैसे आप के ऊपर हावी हो जाती है. पर जैसा कि मैंने ऊपर कहा है, मैं बहुत भावुक व्यक्ति नहीं हूँ. बी. एस सी. करते-करते मैं रूमनियत के उस दौर से बाहर निकल आया. फिर, सामाजिक तथा राजनैतिक विषयों पर आधारित कविताएं लिखीं. वह समय तमाम तरह के आंदोलनों का दौर था. मैं समझता हूँ उसके बाद मेरी कविता की कसावट भी बढ़ी. और बाद में धर्मयुग, नवनीत, ज्ञानोदय आदि पत्रिकाओं में मेरी कविताओं को स्थान





१ जून १९४१, मथुरा (उ. प्र.);  
एम. एससी. (भूगर्भ विज्ञान, मुंबई वि. वि.)

नवभारत टाइम्स में १९९५ से व्यंग्य स्तंभ 'खाली-पीली' का लेखन. शुक्रवार, सन्मार्ग (कोलकाता, अमर उजाला (उ. प्र.), दैनिक ट्रिब्यून (चंडीगढ़), सेन्टिनल, (गुवाहाटी) आदि में व्यंग्य लेख नियमित रूप से प्रकाशित. हिंदी इंटरनेट न्यूज पोर्टल प्रभा साक्षी में नियमित व्यंग्य लेखन.

**संपर्क :** बी-१२, जमुना दर्शन, बांगड़नगर,  
गोरेगांव (प.), मुंबई-४००१०४  
मो. : ९९८७०३४५३०  
ईमेल : yagya.g.sharma@gmail.com

भी मिला.

इस समय मेरी कविता हाशिये पर नहीं चली गयी है, बल्कि गायब हो गयी है. उसका कारण है समय और शक्ति की कमी. १९९५ में नवभारत टाइम्स में मेरा व्यंग्य स्तंभ 'खाली पीली' शुरू हुआ. लिखने का काफ़ी समय और ऊर्जा उसमें लगने लगे. फिर, मैं नौकरी भी करता था. नौकरी का समय आप किसी और चीज़ को दे नहीं सकते. इस तरह कविता लिखने का समय ग़ायब हो गया. हालांकि अब मैं रिटायर हो चुका हूँ. लेकिन, अपने ही पैदा किये कुछ कारणों से समय की कमी हमेशा रहती है. वैसे, बड़ी इच्छा है कि कविता लिखना फिर शुरू करूँ. यदि समय निकाल सका तो हो सकता है, कुछ कविताएं भी लिखूँ. आपको मन की एक बात बताता हूँ — कविता लिखने से जो संतोष मिलता है, वह अद्भुत होता है.

●आपको वाचिक श्रेणी के व्यंग्यकार के रूप में जाना जाता है, इस पर आपकी प्रतिक्रिया क्या होती है?

मैं कभी-कभी मंच से रचनाएं पढ़ता हूँ. पर बहुत ज़्यादा नहीं. गद्य-व्यंग्य में वाचिक परंपरा के वास्तविक

रचनाकार तो शरद जोशी और के. पी. सक्सेना थे. मैं तो शरद जोशी और के. पी. सक्सेना के आसपास भी नहीं पहुंचता. हां, कहीं-कहीं श्रोता मेरी रचनाएं पसंद कर लेते हैं. तो, कहीं-कहीं मेरी अच्छी खासी धुलाई भी हुई है. शायद, मैं केवल एक खास क्रिस्म के श्रोताओं तक ही पहुंच पाता हूँ. जहां तक मेरी प्रतिक्रिया का प्रश्न है, अगर मुझे वाचिक श्रेणी में शामिल किया जाता है, तो मुझे तो खुशी ही होगी. क्योंकि लिख कर आप जितने पाठकों तक पहुंच सकते हैं, सम्मेलन में रचना पाठ करके आप उनसे कई गुना ज़्यादा लोगों तक पहुंच जाते हैं. दूसरे, मंच से पढ़ते समय आपको जो प्रतिक्रिया मिलती है, वह नकली नहीं होती (यहां, मैं श्रोताओं की रुचि के स्तर की बात नहीं कर रहा हूँ). मंच पर मिली श्रोताओं की स्वतःस्फूर्त सराहना बड़ा सुख देती है. और, जैसा कि मैंने कहा, मैं कुछ खास क्रिस्म के श्रोताओं तक ही पहुंच पाता हूँ, सब तक नहीं.

●आज जिस तरह के व्यंग्य लिखे जा रहे हैं, उनमें न तो हास्य दिखता है और न व्यंग्य, ऐसा क्यों?

मैं यहां अपनी पहले कही बात दोहराऊंगा — हर व्यक्ति वैसा लिखता है, जैसा उसका स्वभाव होता है. और, बहुत से लोग जो ईमानदारी से व्यंग्य लिख रहे हैं, वे यह मानते हैं कि व्यंग्य में हास्य आवश्यक नहीं है. इस विचार को ग़लत नहीं कहा जा सकता. लेकिन, जैसे हास्य को आवश्यक नहीं माना जाता, वैसे ही हास्य को अनावश्यक भी नहीं माना जा सकता. मैं मानता हूँ कि हास्य से व्यंग्य की रोचकता और पठनीयता में वृद्धि होती है. हां, रोचकता की खातिर हास्य को जबरन टूंसना नहीं चाहिए. उसी तरह व्यंग्य को जबरन गंभीर बना कर उसे अपठनीय भी नहीं बनाना चाहिए. शरद जोशी ने अपने लेख 'अध्यक्ष महोदय' में लिखा है — “जो आदमी सुबह से ही गंभीर हो जाता है, वह शाम होते-होते मनहूस हो जाता है.” श्रोता इस वाक्य पर ठहाके लगाते हैं. मेरे ख़याल से व्यंग्यकारों को इस वाक्य के हास्य की गंभीरता पर विचार करना चाहिए.

●आजकल नये व्यंग्यकार जो लिख रहे हैं, उसमें व्यंग्यात्मकता की निहायत कमी दिखती है, यह कहीं जल्दी से जल्दी छपने की छटपटाहट तो नहीं ?

आजकल लिखे जाने वाले व्यंग्य में व्यंग्य-तत्व की कमी का प्रश्न बड़ा सार्थक है. लेकिन, इसका सही-सही उत्तर देना बहुत कठिन है. मैं अपना पहले दिया उत्तर थोड़े

अलग ढंग से दोहराऊंगा — अगर, आपके स्वभाव में व्यंजना नहीं है, तो आपके लिए व्यंग्य लिखना आसान नहीं है। अब, अपना स्वभाव तो आप ही पहचान सकते हैं। बहुत-से लोग टिप्पणी करने को ही व्यंग्य मान लेते हैं। यही कारण है बहुत-से व्यंग्य निबंध या समीक्षा की शैली में लिखे जा रहे हैं। इन लेखों में अक्सर विसंगतियों का जिक्र होता है और उनकी आलोचना भी की जाती है। लेकिन, विसंगतियों की आलोचना को ही व्यंग्य मान लिया जाये, तब तो सारे के सारे वामपंथी लेखन को व्यंग्य मानना पड़ेगा।

आपने जल्दी, झटपट छपने की छटपटाहट का प्रश्न भी उठाया है। जल्द से जल्द बहुत कुछ हासिल करने की इच्छा मनुष्य का स्वभाव है। वैसे, व्यंग्यकार इससे बच सकें तो बेहतर होगा। दुनिया में हर काम को साधना पड़ता है। और, साधने में समय लगता है। मैं ऐसा मानता हूँ कि हिंदी के हर व्यंग्य लेखक ने कबीर तो पढ़ा ही होगा। कबीर से बड़ा व्यंग्यकार शायद दुनिया में कोई नहीं हुआ। और, कबीर ने कहा है — ‘धीरे धीरे रे मना...’ व्यंग्यकार यह समझ लें तो दीर्घ काल में उनका ही लाभ होगा।

● **देखने में आ रहा है कि हर कोई रातोंरात लेखक नहीं, बल्कि प्रसिद्ध लेखक बन जाना चाहता है, इसके लिए आप क्या कहना चाहेंगे?**

मेरे पिताजी ने मुझे एक बार संस्कृत का एक श्लोक सुनाया था, जिसके शब्द अब मुझे आधे-अधूरे याद हैं। उस श्लोक का अर्थ यह था — “वह घड़ा फोड़ेगा, कपड़े फाड़ेगा, गधे की सवारी करेगा। मनुष्य किसी भी क्रामत पर प्रसिद्ध होना चाहता है।” मधु जी, मनुष्य के अंदर प्रसिद्ध होने की लालसा हमेशा से रही है। लेखक भी मनुष्य होता है। हां, लेखकों में ऐसे मनुष्य भी होते हैं जिनमें सब्र होता है। जो अपने लेखन का मूल्यांकन कर सकते हैं। अपनी रचना को पाठक की तरह पढ़ सकते हैं। अपने आप से प्रश्न पूछ सकते हैं — ‘कोई पाठक मेरा यह लेख क्यों पढ़ेगा? अगर यह लेख किसी और ने लिखा होता तो मैं इसे पढ़ता क्या?’ जो लेखक चाहता है कि लोग उसे पढ़ें, तो उसे अपने आपसे ये सवाल जरूर पूछने चाहिए।

● **एक जिज्ञासा...पेपर में प्रकाशन हेतु व्यंग्य देने पर वहां शब्द सीमा तय है... कहीं ५०० शब्द... तो कहीं ७५० शब्द, यह कहां तक सही है? आजकल कुछ समाचारपत्र तो मात्र ३०० शब्दों का व्यंग्य मांग**

**रहे हैं, इस पर आप क्या कहना चाहेंगे?**

जहां तक मैं समझता हूँ, शब्द सीमा तय करने का एक बड़ा कारण है — नयी टेक्नोलॉजी। नयी टेक्नोलॉजी ने जानकारी को पाठकों तक जल्दी पहुंचाना संभव बनाया है। लेकिन इस टेक्नोलॉजी का फायदा उठाने के लिए बहुत-से संपादकीय कामों को भी यांत्रिक बनाना जरूरी हो गया। नियमित स्तंभों के स्थान और आकार निश्चित कर दिये गये। अगर सामग्री सही आकार की है तो कंप्यूटर का एक बटन दबाने से सामग्री अपने तय स्थान पर जा कर फिट हो जाती है। किसी सब-एडिटर को घंटे भर तक बैठ कर गैली नहीं चिपकानी पड़ती। सारा मसला समय की कमी का है।

जहां तक २५०-३०० शब्दों में लेख लिखने की बात है, उसके व्यावहारिक कारण अखबार वालों को ही मालूम होंगे। मैं किसी अखबार में काम नहीं करता, इसलिए असली कारण मुझे नहीं पता। मैं केवल अनुमान लगा सकता हूँ। बदलते हालात के साथ पत्र-पत्रिकाओं में भी व्यापार (अर्थात पैसा) बहुत प्रमुख हो गया है। अखबार में ‘स्पेस’ की क्रीमत है। इसीलिए तो ‘पेड न्यूज’ शुरू हो गये। अब, अखबार अपना ‘स्पेस’ कमाई के साधनों में लगाना चाहते हैं। मैंने सुना है कि कहीं-कहीं तो अब सांस्कृतिक और सामाजिक समाचार प्रकाशित करने के भी पैसे लिए जाने लगे हैं। दुनिया बदल रही है। लेखकों को भी बदलना पड़ेगा।

जहां तक ७००-७५० शब्दों में अपनी बात कहने का प्रश्न है, मुझे इसमें कोई अड़चन नजर नहीं आती। वैसे भी लेखकों को ध्यान रखना चाहिए कि आज की दुनिया में समय की भारी कमी है। यह बात पाठकों पर भी लागू होती है। इसलिए, अगर लेखकों को अपने पाठक और कम न करने हों तो छोटे में अपनी बात कहना सीखना चाहिए। वह लेखक ही क्या जो अपने शब्दों पर नियंत्रण न कर सके।

● **आज का युवा वर्ग हिंदी साहित्य पढ़ने से कतराता है, इसके लिए किसे जिम्मेदार मानते हैं?**

सबसे ज्यादा जिम्मेदार हैं लेखक। यज्ञ शर्मा को पढ़ना सबका कर्तव्य है, ऐसा संविधान में नहीं लिखा है। गूढ़ लिखना तो फिर भी समझ में आता है। लेकिन, अबूझ लिखने को आप कैसे उचित ठहरा सकते हैं? आप जो लिख रहे हैं, यदि वह पाठक को पकड़ता नहीं है, तो वह आपको क्यों पढ़ेगा? मैं दूसरों की बात क्यों करूँ, अपनी बात बताता हूँ। मैं जब किसी की रचना पढ़ता हूँ और अगर

कविता का पहला बंद या लेख का पहला पैरा मुझे नहीं पकड़ता, तो मैं आगे नहीं पढ़ता. क्योंकि पांच पन्ने पढ़ने के बाद मैं यह नहीं सोचना चाहता कि यह लेख मैंने क्यों पढ़ा. इसलिए, अगर हिंदी के लेखक चाहते हैं कि पाठक उनसे जुड़े रहें, तो उन्हें भी हकीकत को समझना चाहिए. रचना के शुरू में ही पाठक को कैसे पकड़ा जाये यह शिल्प सीखना चाहिए. लिखना आपकी मजबूरी हो सकती है, पढ़ना पाठक की मजबूरी नहीं है. आप लेखक हैं, पाठक के मालिक थोड़े ही हैं कि नहीं पढ़ेगा तो नौकरी से निकाल देंगे.

●कुछ सवाल... विमर्शों को लेकर. हिंदी साहित्य जगत में जो विमर्श चल रहे हैं, उनको लेकर आप क्या सोचते हैं? आपको लगता है इन विमर्शों से समाज में कुछ परिवर्तन आया है...विशेष रूप से स्त्री विमर्श और दलित विमर्श?

मधु जी, विमर्शों के बारे में सोचने को बहुत कुछ है. लेकिन, बहुत-से लोग जो इन विमर्शों के अगुआ बन गये हैं, उनके बारे में सोचने को मन नहीं करता. इन ज्यादातर अगुआ लोगों के संबंध और रवैये सामाजिक से ज्यादा राजनैतिक हैं. उनके आंदोलनों में अक्सर राजनीति जैसी आक्रामकता दिखाई देती है. समाज में परिवर्तन आक्रामकता से नहीं आता. आप आक्रामकता से धर्म बदलवा सकते हैं, मन नहीं. और, जो आपको सदाशयता सिखा रहे हैं, क्या वे स्वयं अपने जीवन में सदाशय हैं? जीवन को चलाने वाली सबसे बड़ी शक्ति है — स्वार्थ ! स्वार्थ से शक्ति हासिल की जाती है और शक्ति से स्वार्थ. हर प्रकार के उत्पीड़न का संबंध स्वार्थ से जुड़ा है. इस दुनिया में कौन है जो अपना स्वार्थ आसानी से छोड़ देगा? इन्सान का रवैया तब बदलता है, जब बदलने में उसे लाभ नज़र आये या नुकसान से बचने का रास्ता नज़र आये. वरना, शोषण हर व्यवस्था में होता है. इन विमर्शों का एक फ़ायदा तो है — कुछ समय के लिए लोगों का ध्यान समस्या पर केंद्रित हो जाता है.

ज्यादातर विमर्शों के साथ समस्या यह है कि वे हर समस्या का हल कानून में देखते हैं. पर क्या वे खुद नहीं जानते कि हर कानून को तोड़ा जा सकता है! अगर, कानून ही हर समस्या का समाधान होता तो आज तक कानून साधारण अपराध भी रूकवा क्यों नहीं पाया? असली समाधान मन बदलने में है. और, मन को तो इतिहास के इतने सारे मसीहा और इतने धर्म तक नहीं बदल पाये. बल्कि स्वयं

धर्मों ने अलग तरह के अनाचारों को जन्म दिया. मधु जी, उत्पीड़न के दो सबसे बड़े कारण हैं — लालच और अहंकार. कोई विमर्श इन्हें कैसे दूर करेगा, मैं नहीं जानता. वैसे, मेरी हार्दिक इच्छा है कि जितने भी विमर्शकारी हैं, वे अपने उद्देश्य में सफल हों. किसी लाचार इन्सान के शोषण या उत्पीड़न को किसी भी तरह उचित नहीं ठहराया जा सकता.

●भारत में जो आरक्षण प्रथा चली आ रही है, इसके बारे में आप क्या सोचते हैं? क्या यह आरक्षण खत्म नहीं हो जाना चाहिए...काफ़ी लंबा समय हो गया अब तो?

इस प्रश्न का उत्तर देना वाकई कठिन है. आरक्षण बहुत बड़ा राजनैतिक मुद्दा है. और राजनीति तो विसंगतियों का घर है. इसलिए आरक्षण भी विसंगतियों से भर गया है, क्योंकि वह सिर्फ सामाजिक उद्धार का मामला नहीं रह गया है, वोट हासिल करने का ज़रिया बना दिया गया है. वैसे, जो कमज़ोर आदमी अपने अधिकार हासिल नहीं कर सकता, उसे उसके अधिकार दिलाने का को मार्ग तो होना ही चाहिए. आरक्षण देने का मुख्य कारण यही था. लेकिन, राजनीति के खेल ने आरक्षण के लिए ज़रूरी सबसे बड़े मुद्दे को नज़रअंदाज़ कर दिया — योग्यता. आरक्षण में योग्यता और उसे बढ़ाने को महत्व नहीं दिया गया. जिन लोगों को आरक्षण देना है, उनकी योग्यता बढ़ाने का कोई प्रयास नहीं किया गया. यह नहीं सोचा कि एक बार आरक्षण देने के बाद जब उस आरक्षण प्राप्त व्यक्ति को प्रतियोगिता का सामना करना होगा, तो कैसे करेगा? जिन्होंने आरक्षण नीति बनायी क्या उन्होंने योग्यता बढ़ाने की कोई व्यवस्था की? आपने बीज तो बोया नहीं, लेकिन पेड़ पर फल लटका दिये. नया पेड़ उगाने में बड़ा समय और मेहनत लगती है. यह काम कौन-सी राजनैतिक पार्टी करेगी? चूंकि राजनीति में यह काम करने की क्षमता नहीं, इसलिए आरक्षण का यह मसला हमेशा कायम रहेगा. वैसे आरक्षण से कोई फ़ायदा नहीं हुआ, यह नहीं कहा जा सकता. आरक्षण पाने वाले वर्ग के राजनेताओं को जम कर फ़ायदा हुआ है. वे सारे फ़ायदे हुए हैं जो राजनीति दे सकती है. इसलिए, आरक्षण से फ़ायदा तो होता है, पिछड़े समाज का तो पता नहीं, लेकिन पिछड़े नेताओं को ज़रूर होता है. देखते हैं पिछड़े समाज का उद्धार कब होता है?

●आज विवाह संस्था के सामने एक बड़ा संकट लिब-इन-रिलेशनशिप के रूप में आया है, इसे आप किस रूप में देखते हैं?

इस प्रश्न के उत्तर में उलझने बहुत हैं। लिव-इन को व्यक्तिगत स्वतंत्रता के रूप में पेश किया जाता है। जब तक यह व्यक्तिगत स्वतंत्रता दूसरों के लिए कोई अड़चन पैदा नहीं करती, उसकी आलोचना करना कठिन है। यह संबंध मेरी उम्र के व्यक्तियों की मान्यताओं के खिलाफ हो सकते हैं। लेकिन, हम तो लगभग बीता हुआ कल बन चुके हैं। अगर, हमारी मान्यताएं और मूल्य नयी पीढ़ी स्वीकार न करना चाहे तो हम मन ही मन चिढ़ने के सिवाय कुछ नहीं कर सकते। वैसे भी, विवाह नामक संस्था के औचित्य पर काफ़ी पहले ही सवाल उठाये जा चुके हैं। बहुत से लोगों ने विवाह की आवश्यकता को सिरे से नकार दिया है। लिव-इन-रिलेशनशिप इसी दिशा में एक क़दम आगे है। उसमें हमेशा साथ रहने की 'मजबूरी' को नकारा गया है। असल में नयी पीढ़ी तमाम तथाकथित 'नैतिक' और कानूनी ज़िम्मेदारियों से मुक्त होना चाहती है। अगर, बिना कानून तोड़े वे मुक्त होने का कोई रास्ता निकाल लेते हैं, तो आप क्या कर सकते हैं। जब दो वयस्क अपनी मर्जी और सहमति से साथ रहने का निर्णय करते हैं तो उसमें आप कोई शिकायत नहीं कर सकते।

मेरे पास लिव-इन के बारे में शिकायत करने का कोई बड़ा आधार नहीं है। हां, मुझे इस संबंध को स्वीकार करने में एक अड़चन होती है। लिव-इन आपको आनंद से जीने की आज़ादी देता है। लेकिन, जीवन केवल 'आनंद' की आज़ादी नहीं है, जीवन का सबसे महत्वपूर्ण कर्तव्य है ज़िम्मेदारी। मुझे लगता है लिव-इन वाले ज़िम्मेदारियों से भी आज़ाद होना चाहते हैं। पश्चिमी देशों में आपको इतने सारे 'सिंगल' माता-पिता दिखाई देते हैं, वे सब इस आज़ादी के कारण अकेले रह कर बच्चे पालते हैं। सब जानते हैं आज बच्चे को जन्म देना आपके नियंत्रण में है। लेकिन, बच्चा हो गया तो? उसके जवाब में बच्चे के कानूनी हक़ की बात की जाती सकती है। लेकिन, हम सब जानते हैं कि अगर कोई कानून को न मानना चाहे तो कानून को भी मैनैज़ किया जा सकता है।

आपने सही कहा है, लिव-इन पर आपने कोई व्यंग्य नहीं देखा है। उसका कारण यह है कि इस व्यक्तिगत आज़ादी की विसंगतियां अभी ज़ाहिर नहीं हुई हैं। मैंने एक लेख ज़रूर लिखा था। एक मशहूर लिव-इन जोड़े में ज़ोर से झगड़ा हुआ और नौबत पब्लिक में गाली-गलौज तक पहुंच गयी। जो रिश्ता गले लग कर बनाया गया था, उसमें गला पकड़ने की नौबत आ गयी। क्यों? कहा जाता है कि लिव-इन-रिलेशनशिप एक दूसरे पर विश्वास से कायम होती है। मैं इस बात पर भरोसा नहीं करता। मेरे ख़्याल से तो लिव-

इन का आधार विश्वास नहीं, अविश्वास है। यह रिश्ता शुरू करने से पहले शायद मन में यह सवाल उठता है — 'आज तो मुझे इस पर विश्वास है, पता नहीं कल रहेगा कि नहीं।' अगर, आपको अपने साथी पर सचमुच विश्वास है तो लिव-इन की ज़रूरत क्या है? शादी करने में क्या बुरा है। पश्चिम में बहुत-से लोगों ने बरसों तक लिव-इन में रहने के बाद शादी की है। क्या कोई लिव-इन वाला बता सकता है, बरसों तक आज़ाद रहने के बाद उन्होंने अपनी आज़ादी क्यों गंवा दी?

● **लिव-इन की तरफ़ युवा वर्ग का रुझान तो समझा जा सकता है, पर इसका लाभ (मैं लाभ ही कहूंगी) प्रौढ़ वर्ग ज़्यादा उठा रहा है, आप क्या कहते हैं इस बारे में?**

मेरे ख़्याल से आपने सही शब्द का इस्तेमाल किया है — लाभ! जी हां, लिव-इन में बिना ज़िम्मेदारियों के शारीरिक सुख का लाभ मिलता है। प्रौढ़ वर्ग इसका लाभ अधिक आसानी से उठा सकता है। प्रौढ़ व्यक्तियों को जीवन का अधिक अनुभव होता है। उन्हें कम उम्र के पार्टनर को चालाकी से फुसलाने के तरीक़े आते हैं। वे इमोशनल ब्लैकमेल कर सकते हैं। अपनी वासना को प्रेम का जामा पहना सकते हैं। और, जब गोटी टेढ़ी फंस जाये तो समस्या से बाहर निकलना भी जानते हैं। यह एक आज़ाद रिश्ता है। चालाक आदमी दुनिया में हर तरह की आज़ादी का फ़ायदा बड़ी आसानी के साथ उठा सकता है। देखा जाये तो हमारी आज़ादी के साथ हमारे नेताओं ने और क्या किया है?

● **क्या इस प्रकार की रिलेशनशिप का कोई स्थायी भविष्य है ?**

एक अस्थायी संबंध का स्थायी भविष्य हो भी कैसे सकता है? यह संबंध आज़ाद रहने के लिए बनाया जाता है। जबकि ज़िंदगी के असली संबंधों में ऐसी आज़ादी नहीं होती। वास्तव में लिव-इन-रिलेशनशिप में 'रिलेशनशिप' शब्द संबंध या रिश्ते का सूचक नहीं है। हर रिश्ते का कोई विशेष नाम होता है — पति, पत्नी, भाई, भतीजा, चाचा, चाची, वगैर। जबकि लिव-इन में रहने वाले अपने साथी के लिए 'पार्टनर' शब्द का इस्तेमाल करते हैं। आम ज़िंदगी में 'पार्टनर' किसी रिश्ते का नहीं, बल्कि धंधे का शब्द है। मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि लिव-इन एक धंधा है। मेरी समझ में लिव-इन-रिलेशनशिप में 'रिलेशनशिप' असल में एक अरेंजमेंट है। और, ज़्यादातर अरेंजमेंट तात्कालिक ही होते हैं।

● **एक बात और – लिव-इन-रिलेशनशिप पर**

**कहानियां, उपन्यास तो दिखाई देते हैं, पर व्यंग्य विधा में इस विषय को नहीं छुआ गया है, कोई विशेष कारण?**

मैंने लिव-इन-रिलेशनशिप पर एक लेख नवभारत टाइम्स में लिखा है। हां, अगर किसी और व्यंग्यकार ने भी लिव-इन पर लिखा है, तो मेरी नज़रों से गुज़रा नहीं। मेरे खयाल से लिव-इन पर व्यंग्य न लिखने का कारण यह है कि यह रिलेशनशिप अपने आप में कोई विसंगति नहीं है। ये अलग खयालात रखने वाले लोगों के बीच बनी रिलेशनशिप है। मेरे और आपके जैसे पुराने खयाल के लोगों को यह रिलेशनशिप भले ही पसंद न आती हो, लेकिन जब तक लिव-इन में रहने वाले दूसरों के लिए कोई समस्या पैदा नहीं करते, कोई भी दो वयस्कों के बीच आपसी सहमति से हुए समझौते पर आपत्ति या टिप्पणी नहीं कर सकता।

**●विदेश में जो हिंदी साहित्य लिखा जा रहा है, जिसे हम प्रवासी साहित्य के नाम से जानते हैं, उसके बारे में आप क्या कहते हैं?**

यह कई मायने में बड़ा नाज़ुक प्रश्न है। मैं व्यक्तिगत स्तर पर प्रवासी लेखकों से अत्यंत प्रभावित हूँ कि विदेश में बस कर भी वे अपनी भाषा से कटे नहीं। इतना ही नहीं, भाषा की जो असली जीवन शक्ति होती है — रचनात्मकता, उसे कायम रखा। जबकि आजकल भारत में अपनी भाषा के प्रति अपने देश के लोगों के लगाव को हम अच्छी तरह जानते हैं।

प्रवासी साहित्य में एक कोण और है जिसके बारे में बोलने में संकोच होता है। प्रवासी लेखकों को हमारे देश के लेखकों से बहुत-सी शिकायतें हैं। मुख्यतः उनके साहित्य के मूल्यांकन को लेकर। वे समझते हैं कि उनके साहित्य का भारत में सही मूल्यांकन नहीं होता। मैं उनसे केवल एक बात कहना चाहता हूँ, अगर वे विदेश में न रह कर, स्वदेश में रह कर लिखते तो भी उनकी यह शिकायत दूर नहीं होती। हिंदी में मूल्यांकन तिकड़म का पर्यायवाची शब्द बन गया है। यहां भी कोई लेखक अपने मूल्यांकन से संतुष्ट नहीं है, जो तिकड़म करते हैं, वे भी नहीं। इसलिए, बुद्ध के शब्दों में कहूँ तो — 'आप्त दीपो भव!' अपना मूल्यांकन स्वयं करिए। दूसरा कोई आपके साहित्य के बारे में क्या सोचता है, उसकी फ़िक्र मत करिए। वह जैसा सोचता है, सोचने दीजिए, आपने अपनी रचना उसके लिए थोड़े ही लिखी थी!

**●भारत से गये अपने लोग जो रच रहे हैं उसमें वे वहां के हालात दिखाने में सफल हैं या नहीं?**

मधु जी, मैंने प्रवासी लेखकों का इतना साहित्य नहीं

पढ़ा है कि अधिकार से कुछ कह सकूँ। वैसे भी, राय देने और समीक्षा करने से मैं बहुत दूर रहता हूँ। राय देने के लिए जितनी महारत होनी चाहिए, मेरे पास नहीं है। समीक्षा करने के लिए साहित्य का जैसा विशद अध्ययन करना चाहिए, मैंने नहीं किया है। साथ ही, मैंने देखा है कि अक्सर समीक्षाओं से विवाद पैदा होते हैं। मैं किसी से बहस नहीं करना चाहता। बहस में समय लगाने के बजाय, उस समय को मैं अपना कुछ लिखने में या अपनी पसंद का साहित्य पढ़ने में बिताना ज़्यादा पसंद करता हूँ। मैं नहीं जानता लोगों का ध्यान इस ओर गया है या नहीं, जिस तरह मैं किसी को राय नहीं देता और समीक्षा नहीं करता, उसी तरह मैं किसी से अपने लेखन के बारे में राय नहीं मांगता, न समीक्षा करने को कहता हूँ। जिस दुविधा से मैं बचना चाहता हूँ, उसमें किसी और को क्यों डालूँ!

**●पुरस्कार आपके लिए क्या मायने रखते हैं ?**

पुरस्कार मेरे लिए अच्छे मायने रखते हैं। मैं पुरस्कार को सीधा धनराशि से जोड़ कर देखता हूँ। इसलिए, जितना बड़ा पुरस्कार, उतना अच्छा। लेकिन, आजकल पुरस्कार शब्द कम इस्तेमाल होता है। सम्मान ज़्यादा होता है। हिंदी में होने वाले सम्मान एक ओर अच्छी चीज़ हैं, तो दूसरी ओर एक पहली भी हैं। बहुत-से सम्मानों में लेखक को पन्नी में लिपटा एक नारियल, एक दुपट्टेनुमा शाल और कंप्यूटर पर प्रिंट करके एक प्रशस्ति-पत्र थमा दिया जाता है। कई सम्मान वास्तव में लेखक का सम्मान करने के लिए नहीं किये जाते। बल्कि लेखक को औज़ार बना कर सम्मान करने वाले अपना प्रचार करवाते हैं। कुछ सम्मान करने वालों ने सम्मान करना अपना वार्षिक धंधा बना लिया है। वे लेखक को टेंगा देते हैं और खुद सम्मान का आयोजन करके माल बटोरते हैं। वैसे, हिंदी में ऐसे लेखकों की भी कमी नहीं है, जो सम्मान करवाने को इतने लालायित होते हैं कि अपने खर्च पर भी अपना सम्मान करवाने को तैयार रहते हैं। हिंदी में सम्मानों के अनेक क्रिस्से हैं और हिंदी पढ़ने-लिखने वाले उनसे भली भांति परिचित हैं। मैं हर उस सम्मान को सम्मानजनक मानता हूँ जिसमें लेखक को कोई उचित राशि भेंट की जाती हो।

**मधु अरोड़ा**

एच-१/१०१, रिद्धि गार्डन्स,  
फिल्म-सिटी रोड, मालाड (पूर्व),  
मुंबई-४०००९७.  
मो. - ९८३३९५९२१६





## भारतीय सिनेमा की एक बहादुर योद्धा : अनुराधा तिवारी

✍ सविता राजाज

ब रसों पहले जब मैं फ़िल्मों में आयी तो हर जगह मर्दों का राज था. लेखन, निर्देशन, प्रॉडक्शन, संगीत, मेकअप सब जगह. पहली फ़िल्म 'उसकी रोटी' जिसमें मैं सह-नायिका थी, मणी कौल निर्देशक थे. लेकिन पूरी यूनिट में एक भी महिला कर्मी न थी. दूसरी फ़िल्म 'आनंद' में सिर्फ़ एक असिस्टेंट थी — सुशीला कामत. लड़कियां ज़्यादातर सुंदर, बन-ठन कर कैमरे के सामने आने को ही बेताब रहती थीं. हां कभी कभार वह कॉस्ट्यूम करती थीं या फिर डांस डायरेक्टर को असिस्ट करतीं. नामी लेखिकाएं फ़िल्में लिखती तो थीं लेकिन गिनी-चुनी थीं. मसलन इस्मत चुगताई. किशन चंदर की पत्नी सलमा सिद्धीकी की लिखी कहानी पर एक टेली फ़िल्म बनी थी, जिसमें मैं भी थी और किरण खेर भी थी. अमृता प्रीतम जिन्हें मैं दिल्ली से जानती थी, उनकी लिखी क़िताब 'पिंजर' पर फ़िल्म बनी लेकिन वे फ़िल्म की कामयाबी न देख सकीं, भगवान को प्यारी हो गयीं. इस्मत चुगताई ही तब, ख़ूब नामी थीं जिनकी कहानियों पर फ़िल्में बनतीं. उन्हें मैंने ख़ूब पढ़ा था और शशी कपूर की फ़िल्म 'जनून' में हम दोनों साथ थीं.

दोस्ती हो गयी थी जिसे मैंने ख़ूब निभाया. उनकी लेखनी बोलती तो थी ही वे ख़ुद एक दिलदार, निडर ईमानदार औरत थीं. उनकी पर्सनैलिटी का मुझ पर काफ़ी प्रभाव भी पड़ा.

वक्रत बीतता गया, छोटे बक्से का ज़माना आ गया. नयी-नयी चैनलों की बाढ़ आ गयी. पैसा कमाने का स्रोत मिल गया और सब फ़िल्मवाले इस बहती गंगा में कूद पड़े.

कुछ महिलाएं (लेखिकाएं) जैसे उषा दीक्षित जो बालिका वधू के संवाद लिखती हैं, दूरदर्शन में बतौर लेखिका ख़ूब नाम कमा चुकी थीं. बहुत सारी महिलाएं सीरियलों के लेखन से जुड़ गयीं और कुछ ने निर्देशन या ऐडिटिंग डिपार्टमेंट को चुना. मैं रेडियो, फ़िल्म, दूरदर्शन वगैरह के किसी भी क्राफ़्ट में जाती तो हर क्राफ़्ट में एक बहुत ही

हंसमुख, मिलनसार, गढीले सुंदर, पढ़ी-लिखी, भरे-भरे बदन वाली एक जवां औरत भरपूर आदर से मेरा स्वागत करती तो मैं उस पर वारी वारी हो जाती और कहती — जीती रहो बेटा जी. मुझे अचंभा होता था यह सोचकर



कि यह महिला हर काम को कैसे संभाल लेती होगी. बहुत पढ़ी-लिखी थी वो. एक दिन सिनेमा वर्कशाप ख़त्म होने पर मैं उस महिला के पीछे ही पड़ गयी. प्लीज़ अपना बायोडाटा दो न, आपका साक्षात्कार करना है 'कथाबिंब' के लिए. इस प्यारी-सी महिला का नाम है — अनुराधा तिवारी.

मैं बायोडाटा पढ़ कर हैरान थी. ऐसा बायोडाटा मैंने किसी फ़िल्मी राइटर, या डायरेक्टर के पास नहीं देखा था. फ़िल्म इंडस्ट्री में आने के लिए अनुराधा जी ने पूरी पढ़ाई इसी विधा में की. करीब बीस साल के फ़िल्मी कैरियर में अपनी मेहनत, पढ़ाई-लिखाई और समझदारी के बलबूते पर सब कुछ पा लिया. यानी की रोटी, कपड़ा, मकान, गाड़ी किसी भी चीज़ की कमी न रही. आइए, मेरे प्रिय पाठकों इनसे रू-ब-रू होते हैं :

'बनारस में १९७१ में जन्म हुआ, पली-बढ़ी गोरखपुर में. लेखन तो बचपन से ज़ारी है. रोज़ एक हिंदी फ़िल्म देखती और इतवार को दो. हम सब कॉलोनी के बच्चे एक जीप में बैठकर जाते थे. वह ज़माना अमिताभ बच्चन का था. मेरा दिमाग़ बहुत फ़िल्मी हो गया था. मां ने मेरा बहुत साथ दिया. मां फ़िल्म फ़ेयर मंगवा कर उसमें स्टार लोगों के नाम बतातीं, उनकी फ़िल्मों के पात्रों के बारे में समझातीं. हम लोग बचपन में घर-घर खेलने के बदले फ़िल्म-फ़िल्म खेलते थे. मैं हमेशा हेलेन का पार्ट करती. उसके बाद देहरादून में 'वेलकम स्कूल' में जाकर तो ज़िंदगी के प्रति



### अनुराधा तिवारी

११ अगस्त १९७१, बनारस (उ. प्र.); बी.कॉम., एम.ए. (मास कम्यूनिकेशन).

१९९५ में दिल्ली में ज़ामिया मिलिया इस्लामिया फ़िल्म स्कूल से फ़िल्म निर्देशन में स्वर्ण पदक के साथ एम. ए. करने के पश्चात महेश भट्ट के साथ मुख्य सहायक के रूप में कई फ़िल्मों में काम किया. बाद में काफी समय तक अनुपम खेर की मीडिया आधारित एक कंपनी में स्वतंत्र लेखक-निर्देशक रहीं. पिछले लगभग २० सालों से हिंदी फ़िल्म उद्योग से संबद्ध. अनेक फ़िल्मों का स्क्रिन प्ले लेखन. कुछ प्रसिद्ध फ़िल्में हैं : फ़ैशन (२००८), जेल (२०१०), हीरोइन (२०१२). कई टीवी सीरियलों के स्क्रिन-प्ले भी लिखे.

२०१, वास्तु हाइड्स, सुंदरबन कॉम्प्लेक्स, अंधेरी (प.), मुंबई-४०००५३. मो.: ९८२०२९८४०५

नज़रिया ही बदल गया.

वहां बड़े-बड़े नामी-गिरामी लोगों के बच्चे पढ़ते थे. सही मायने में दुनिया को जानने-समझने की कला वहीं से सीखी. माहौल दुर्लभ था, मेरी पर्सनैलिटी ही बदल गयी. मैं वहां ग्लोबल सिटीज़न बन गयी. अभी तक वही हूँ. स्कूल पास करने के बाद दिल्ली के श्रीराम कॉलेज से बी. कॉम. किया. और फिर ज़ामिया मिलिया से मास कम्यूनिकेशन किया. दिल्ली का माहौल काफ़ी पॉलिटिकल था. हां औरतों की जागरूकता और चेतना के बारे में जाना. वैसे मैं इंडियन फ़ॉरिन सर्विस में एंबेसेडर बनना चाहती थी. नहीं बनी क्योंकि जीवन के प्रति मेरा रुख ही बदल गया था. बगावत तो मुझमें कॉलेज के ज़माने से ही आ गयी थी. बस सब अनुभवों का सम्मिश्रण लेकर १९९६ में बंबई आ गयी. तब जब में दो हजार रुपए थे. मैंने प्लस चैनल के अमित खन्ना को फ़ोन किया तो कोई दूसरी औरत समझ मुझे डांट दिया. जब मैंने उन्हें अपने बारे में बताया तो बोले — आ जाओ. ऑफिस गयी तो वहां महेश भट्ट बैठे थे. बोले — आर यू गुड ? मैंने जवाब दिया — सर, आई एम ब्रिलिएंट.’

**अनुराधा, जब आप बीस साल पहले बंबई आयी थीं तो जवान थीं. ख़ूब सुंदर थीं. महेश भट्ट का साथ मिला. दफ़्तर दफ़्तर जाकर धक्के नहीं खाने पड़े. यानी कि दूसरी औरतों की तरह एक जवां लड़की को आते ही महेश भट्ट का कैप मिला. कोई अनुभव?**

‘सचमुच, महेश जी को मैं अपना गुरु मानती हूँ. बहुत अच्छी फ़िल्में बनाते हैं. दर्शकों को अच्छी कहानी अच्छे निर्देशन से प्रभावित करना जानते हैं. बोले थे — सिनेमा एक माध्यम है दर्शकों तक पहुंचने का, अपनी बात

कहने का. ऐसा लिखो जो याद रहे, एक मिसाल बने. सिर्फ़ अवार्ड जीतने के लिए मत लिखो. काम पर ध्यान दो.’

**आपने अनेक सीरियल लिखे, फ़िल्में लिखीं, अवार्ड बटोरे, सब करने के पीछे नेम फ़्रेम पाना था या कुछ और?**

‘मेरे लिए सिनेमा मैडीटेशन जैसा है. जब हाल में लाइट बंद कर दी जाती है, दर्शक आंखें स्क्रिन पर गड़ाये उसे देखते रहते हैं. फ़िल्म के जरिए एनर्जी दर्शकों तक पहुंचती है. वह पॉज़िटिव होनी चाहिए, फूहड़ता से बचना चाहिए. अगर दर्शक सहृदय नहीं होगा तो आप अपनी कला में कोई उपलब्धि हासिल नहीं कर सकेंगे. मेरी संभावना का क्षेत्र बहुत चौड़ा है. सिनेमा के प्रति बहुत गंभीर हूँ. अपने लेखन के जरिए मनुष्यगत व्यवहारों से गंभीर अर्थ समझाने की कोशिश में लगी हूँ. मैंने मुंबई को कर्मभूमि बनाते हुए अपनी विश्व शक्ति का विकास किया. फ़िल्म, लेखन, निर्देशन वगैरह, सब चीज़ों के अंतर्संबंध हैं. दिल्ली में भी सिनेमा को ही शिक्षक माना. ख़ूब अवार्ड जीते, अपनी मेहनत के बल पर. असंभव और अविश्वसनीय शब्द मेरे शब्द कोष में नहीं हैं. सजग कार्यों में पचासों किरणें अपने आप फूट पड़ती हैं. सीरियल, फ़िल्म या निर्देशन कुछ भी हो. मेरा योगदान हमेशा बना रहता है. मैं लोगों के दिलों में जगह बनाना चाहती हूँ. औरत हूँ लेकिन दया नहीं चाहिए.’

**आप आये दिन विदेश के चक्कर लगाती हैं, कोई ख़ास वजह?**

‘मैं फ़िल्म से जुड़े कार्यों पर प्रयोग करती हूँ. वर्क शॉप करती हूँ, वहां पढ़ाती हूँ. और इस तरह सिनेमा प्रेमियों को अकूत प्रयोगों की प्रेरणा देते हुए उनकी संभावनाओं को

(शेष पृष्ठ ४८ पर देखें)



## भाव उर्मियों से निर्मित श्रेष्ठ कहानियां

✍ प्रो. रुप देवगुण

**हीरे की कनी** (कहानी संग्रह) : कमल कपूर

**प्रकाशक** : सतलुज प्रकाशन, सेक्टर-१६,

पंचकूला (हरि.)-१३४११३ मू. ३००/- रु.

**क**मल कपूर ने नौ कहानी-संग्रह दो लघुकथा-संग्रह, एक उपन्यास, चार काव्य-संग्रह तथा एक बालगीत-संग्रह से हिंदी साहित्य को समृद्ध किया है। इनके सद्यः प्रकाशित कहानी-संग्रह 'हीरे की कनी' में दस कहानियां हैं जो नारी जीवन के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालती हैं। उस संग्रह में नारी के सभी रूप मां, पुत्री, पत्नी, प्रेमिका, सहेली पाये जाते हैं। इन कहानियों में घरेलू औरते हैं, नौकरीपेशा भी हैं। वे पुरुष के प्रति सहज आकर्षित होती हैं। किंतु निर्दयता के विरोध में पुरुष से परे होकर अलग जीवन व्यतीत करने की भी शक्ति रखती हैं। 'मैं इब्बा खातून नहीं' की शीन और 'अस्मि' क्री महिमा अपने-अपने पति के दुर्व्यवहार के कारण उससे दूर हो जाती है।

इस संग्रह की कई कहानियां प्रेम-प्रसंगों पर आधारित हैं। 'हीरे की कनी' की मीरा, अपूर्व साहनी। 'बाट तकत दो नैना हारे' की स्वाति, डॉ. शुभांकर द्विवेदी, 'आखिरी सांस तक' की वसुधा, चंद्रधर द्विवेदी, 'तुमसा कोई नहीं' की आराध्या, मानव आनंद, 'अंतराल' की मून, साहिल तथा 'मैं इब्बा खातून नहीं' की शीन, सागर से प्रेम करती हैं। 'आखिर सांस तक' में प्रेम त्याग पर आधारित होता है। यहां बाह्य नहीं, आंतरिक आकर्षण को तरजीह दी गयी है। 'बाट तकत दो नैना हारे' में भी प्रेम के उज्ज्वल पक्ष को दर्शाया गया है।

प्रेम में सब कुछ सही होता है, यह अपनी कहानियों में लेखिका ने चरितार्थ कर दिखाया है। चंद्रधर द्विवेदी को न दिखाई देता है, न सुनाई देता है। डॉ. शुभांकर द्विवेदी स्वाति से उम्र में बहुत बड़े हैं तथा मीरा भी अपूर्व साहनी से तीन साल बड़ी है। फिर भी इनके पास प्रेम की कोई कमी

नहीं है।

कमल कपूर ने अपनी कहानियों के कथानक घर की दहलीज से लेकर विदेश के विशाल प्रांगण तक संजोये हैं। अपने देश में सभी कहानियां दिल्ली, अलवर, बनिहाल, गुलमर्ग, इलाहाबाद, कलकत्ता हो कभी बंगलौर की धरती से जन्मती हैं। इन कहानियों का कथानक कभी पार्क, कभी रेल का डिब्बा, कभी दफ्तर तो कभी किसी शिक्षा संस्थान या किसी पार्टी में विचरता दिखाई देता है। कथानक की बनावट छोटी-छोटी घटनाओं के संगठन से बनती है। बीच में लेखिका कथोपकथन का अवलंब लेकर कथानक हो तीव्र गति से आगे बढ़ाने में सक्षम रही है।

संग्रह की इन कहानियों के पात्र भावनाओं से ओत-प्रोत हैं। वे जल्दी ही एक दूसरे की ओर आकर्षित होते हैं चाहे वह अपूर्व साहनी और मीरा हों या फिर आराध्या और मानव आनंद। इन कहानियों के पात्र तीन-चार ही होते हैं और वे अत्यंत जीवंत होते हैं। कमल कपूर की लेखनी अपने पात्रों के मूर्तरूप को पाठकों के सम्मुख लाने में समर्थ है। पात्रों की चरित्रगत विशेषताएं उभरकर पाठकों के मस्तिष्क में अपना स्थान बना लेती हैं। चरित्र चित्रण करने के लिए लेखिका ने उपनामों का अवलंब भी लिया है। एक उदाहरण देखिए — सहसा मेरी नज़रों को जैसे मोह-पाश में बांध लिया, सितारों के बीच पूर्णिमा के चांद-सी चमकती, नये पत्ते सी नाजूक, उस गोरी-गोरी निघोर, खुले बालों वाली लड़की ने (मैं इब्बा खातून नहीं) कहीं कोई पात्र किसी अन्य पात्र की प्रशंसा करता है तो वहां भी चरित्र चित्रण अपना अस्तित्व बना लेता है जैसे अलका अपने दामाद समीर की प्रशंसा करती है। लेखिका ने अपने पात्र मध्यमवर्ग या उच्च मध्यवर्ग से लिये हैं।

कमल कपूर ने 'प्रत्यक्ष संवाद' में स्पष्टतः लिखा है कि उन्हें प्रकृति के अवयव — फूल, पेड़-पौधे, पक्षी, आकाश, बादल, चांद की चांदनी, तितलियां, जुगनू सब

बहुत अच्छे लगते हैं। इस प्रसंग में 'पीहर की देहरी' कहानी की उनकी यह पंक्तियां दृष्टव्य हैं — 'श्याम गगन पर टिमटिमाते .....ओर के तारों ने देखा, क्यारियों में ताजा खिले रंगारंग फूलों ने देखा, उन पर छितरी मोतियों की पारदर्शी, ओस-बूंदों ने देखा, छतनार नीम के पेड़ की फुनगी पर बैठी नील चिड़िया ने देखा. लेखिका ने अपनी अधिकतर कहानियों का प्रारंभ प्रकृति चित्रण से ही किया है.

कहानियों के अंत कभी कहानियों के शीर्षक से होते हैं. 'आंचल भर खुशियां', 'हीरे की कनी', 'अस्मि', 'एक सुहानी सांझ' कहानियों में कुछ ऐसा ही है. कहानियों के शीर्षक कथानक के अनुरूप व आकर्षक हैं. 'तुमसा कोई नहीं,' 'एक सुहानी सांझ', 'बाट तकत दो नैना हारे,' 'आंचल भर खुशियां' शीर्षकों में एक विशेष आकर्षण है जो पाठकों को इन कहानियों को पढ़ने के लिए उद्वेलित करता है. अधिकतर कहानियां लंबी हैं किंतु उनमें उबाऊपन की नौबत नहीं आती. रोचकता अंत तक बनी रहती है. कहानियों में रोचकता या निर्माण अधिकतर प्रेमालाप से हुआ है. कमल कपूर का कहानी लिखने का ढंग इतना बढ़िया है कि पाठक उसे आखिर तक पढ़े बगैर रह नहीं सकता.

रचनाकार, कमल कपूर की कहानी 'आंचल भरी खुशियां' एक सुखद परिवार को लिये हुए है. 'पीहर की देहरी' तो भावनाओं पर आधारित एक अविस्मरणीय कहानी है. 'अस्मि' एक विस्तृत फलक को समेटे हुए नारी के भीतर के ओजस्वी रूप को दर्शाती नजर आती है. 'तुम सा कोई नहीं' कहानी में रेल के डिब्बे में उभरते प्रेमबिंब रोचकता की सीमा को भी पार करते दिखाई देते हैं.

इन कहानियों की भाषा में कभी तो पूरे के पूरे वाक्य अंग्रेजी के हैं — मॉम! रियली यू आर ग्रेट, कभी उर्दू के — बरखुरदार! बेशक ये हवाएं पाक और शफ़फ़ाक हैं पर 'लिहाज' नाम का लफ़्ज़ नहीं है इनके पास. तो कभी पंजाबी के — लै बच्चियां दी पसंद कोई भूल्लण वाली गल है कुडिए. कहीं-कहीं पर हिंदी-उर्दू या फिर हिंदी-अंग्रेजी के मिश्रित वाक्यों का भी प्रयोग दिखाई देता है. भाषा पात्रानुकूल है तथा उसमें खानगी है.

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि कहानियों का प्राण रोचकता है, कहानियां नारी जागृति में सहयोगी हैं तथा भावनाओं से ओत-प्रोत हैं. विश्वास है, कमल कपूर भविष्य में और अधिक कहानियां लिखकर अपनी सशक्त

लेखनी का प्रदर्शन करेगी.

✍️ डॉ. गांधीवाली गली, १३/६७६, गोविंद नगर, सिरसा-१२५०५५(हरियाणा)  
मो.: ९८१२२३६०९६

## ‘समय लौट कर नहीं आता’

✍️ प्रो. संदीप शर्मा 'निर्मल'

‘समय याद रखना’ (उपन्यास): संतोष परिहार

प्रकाशक : प्रकाशन संस्थान, ४२६८ बी/३ अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२. मू. २००/-

**का**ल चक्र के बंधन में बंधा समय कहीं सपनों का सुनहरा संसार है तो कहीं आंकाक्षाओं का उजड़ा चमन, कहीं शून्य से शिखर तक का स्वर्णिम सफ़र, कहीं शिखर से शून्य तक का दुखद अनुभव. नदी के जल-सा प्रवाह-मान जीवन समय का सान्निध्य पाकर ही गति पाता है. समय हर प्राणी का आना है. आने से पहले पूर्ण आभास कराता है. अगर न समझे तो गुजर जाता है फिर लौट कर नहीं आता. न समय के आगे चलने वाला विजय पाता है, न समय के पीछे चलनेवाला. समय के साथ चलने वाला विजयी है. प्रस्तुत उपन्यास 'समय याद रखना' पढ़कर ऐसा लगता है कि कृति सृजन के साथ-साथ लेखक ने समय पर शोध कर डाला हो. समय से जोड़कर जीवन को एक नयी गति देने का सफल प्रयास किया है.

पिछले तीन दशकों से अपनी कहानियों और उपन्यासों के माध्यम से चर्चित कथाकार संतोष परिहार का यह पांचवा उपन्यास है... कथा वस्तु संवेदना और शिल्प की दृष्टि से लेखक अपने पिछले उपन्यासों से बहुत आगे निकल गया है. 'समय याद रखना' में न गरीबी है, न शोषण, न दहेज, न भ्रष्टाचार, न आतंकवाद, न परिवारिक अलगाव, इन विषयों से हटकर परिहार जी ने एक नयी ज़मीन तैयार करके इस उपन्यास को मूल रूप दिया है. मानवीय जीवन के विविध पहलुओं को समय के संग जोड़कर आगे बढ़ने का संदेश दिया है. यह भी एक यथार्थ है समय और जीवन रुकने का नहीं चलने का नाम है.

प्रस्तुत उपन्यास की कथा वस्तु पर दृष्टि डालें तो

नर्मदा तट पर बसे एक गांव से कथा प्रारंभ होती है, एक खेतिहार कृषक परिवार जो वर्तमान की होड़ और दौड़ में खुद अनपढ़ होने के बावजूद भी अपने बेटे को पढ़ा-लिखा कर बड़ा अधिकारी बनाने का स्वप्न देखता है. कड़ी मेहनत, अथक प्रयासों से उस परिवार का यह सुख स्वप्न साकार हो जाता है. कथा महानगर की ओर रुख करती है. सामान्यतः कथाओं में पढ़-लिख कर कुछ बन जाने बाद बच्चे अपने माता-पिता से किनारा कर लेते हैं, रिश्ते दरकने लगते हैं मगर प्रस्तुत उपन्यास में ऐसा कुछ नहीं होता. लेखक ने हर क्रीमत पर रिश्तों की गरिमा को बनाये रखने की पुरजोर कोशिश की है और इसमें सफल भी रहे हैं.

मगर वर्तमान में जीवन कुछ अधिक गतिमान हो गया है. तेज़ रफ़्तार जीवन का अहम हिस्सा बनती जा रही है. इसका दुखद परिणाम हम आये दिन समाचार पत्रों में पढ़ते हैं. सड़क दुर्घटनाओं में लोग आये दिन मौत का शिकार बन रहे हैं. ऐसे परिवार पर क्या गुज़रती है जिसका भविष्य ही दुर्घटना का शिकार हो काल के गाल में समा जाये? मांओं उनका समय ठहर जाता है. अगर कथा के मध्य में नायक शांत हो जाये तो कथा शेष बचती है? मगर किसी भी ठहराव पर कथा को न ठहराते हुए लेखक ने अपनी सृजन शीलता का पुख्ता प्रमाण दिया है. कथा की रोचकता में कमी नहीं आने दी. पूरा उपन्यास पढ़ने के बाद अगर कुछ याद रह जाता है तो 'समय' याद रहता है.

संवेदनशील हृदय होने के कारण लेखक ने कथा तत्व को पूरी संवेदना से रचा है, पात्र और घटनाओं के साथ पूरा-पूरा न्याय किया है. पात्रों के संवाद अवसर को मूर्त रूप देने ने पूर्ण समर्थ हैं. उनमें बनावटीपन जरा नज़र नहीं आता है. पठनीयता इस पुस्तक की सबसे बड़ी विशेषता है. घटनाएं आस-पास घटित-सी लगती हैं पाठक स्वयं को कथा से जुड़ा हुआ महसूस करता है. अपने इस अंदाज के चलते 'समय याद रखना', उपन्यास समकालीन परिदृश्य में अपनी अलग पहचान बनाने में पूर्ण समर्थ है. वर्तमान में जहां उपन्यास विधा में सृजन सिमटता जा रहा है, ऐसे में एक वृहद उपन्यास की प्रस्तुति विधा के विस्तार की दिशा में एक सार्थक प्रयास है.

☞ ३ स्टेट बैंक कॉलोनी,  
बुरहानपुर (म. प्र.).  
मो. : ९८९३७१२७४९

## कविता

### पीर

☞ सुरेश 'सौरभ'

एक तनहाई सी,  
एक दर्द सी,  
एक कसक सी,  
एक बेमियाद अदृश्य दीवार सी है,  
एक पीर की नदी सी है  
छल-छल बहती सीने में सदा  
लिये-लिये इसे तड़पता हूं  
खाली सन्नाहों में भटकता हूं,  
यह खालीपन, यह सूनापन  
इस दर्द के अहसास को  
कोई कभी भरेगा, कोई कभी प्रेम से  
जज्बातों को सहलायेगा,  
इसी उम्मीद पर  
लिखता जाता हूं ये कविताएं.

☞ हाथीपुर, उत्तरी लखीमपुर,  
खीरी (उ. प्र.) मो. : ७३७६२३६०

## गीत

☞ मदन देवड़ा

रतनारे नयनों में,  
काजरवा आंज ।  
पीपल की टहनी पर,  
लेटी है सांझ ।  
दिशियों के पलने में,  
गंध रही झूल ।  
धरती के छप्पर पर,  
खिले श्वेत फूल ।  
मेड़ों पर उग आये,  
मेहनत के गान ।  
फ़सलों के अधरों पर,  
बिखरी मुस्कान ।  
एक सपन बैठ गया,  
पलकों के द्वार ।  
मुखर उठे चिर संचित,  
अंतर के तार ।

☞ मालीखेड़ी मार्ग, ऑफिसर्स कॉलोनी  
के निकट, तराना (उज्जैन) ४५६६६५५.  
मो. ९७५२०४५२४०



## अंतिम इच्छा

... पृष्ठ १३ का शेष

अपने बेटे के लिए उदय का सहारा अवश्य चाहिए.

महीने भर बाद जब उदय ने अपनी मां को रेणु की सहमति के बारे में बताया तो मां कुछ बोल नहीं पायी. कुछ ही दिनों बाद दोनों विवाह के बंधन में बंध गये.

मैंने सुरभि को झकझोर कर कहा — 'क्या हुआ? तुम किस दुनिया में खो गयी हो. मैं कितनी देर से तुम्हें आवाज़ दे रहा हूँ लेकिन तुम तो जैसे जगो-जगो ही सो गयी हो. अरे, तुम्हें कब से लियो आंटी....आंटी कहकर बुला रहा है. जाओ, रेणु अंदर बुला रही है.'

रात में खाना-पीना समाप्त करने के बाद हम लोग बहुत देर तक बातें करते रहे. सोते-सोते डेढ़, दो बज गये. सुबह जब नींद टूटी तो सात बज चुके थे. आठ बजे हमें बस पकड़नी थी. हम लोग जल्दी-जल्दी हाथ-मुंह धोकर तैयार होने लगे. निकलते-निकलते साढ़े सात से ऊपर हो गया. सूटकेस पकड़कर बाहर निकल ही रहा था कि देखा नहा-धोकर स्कूली ड्रेस पहने हुए हड़बड़ाता हुआ लियो निकला और सीधे ड्राइंग रूम में जाकर ललित की तस्वीर के आगे सिर झुकाकर प्रणाम करने लगा. प्रणाम करने के पश्चात वह उदय से बोला — 'पापा, जल्दी गाड़ी निकालिए, मुझे देर हो रही है.'

उदय हम लोगों से विदा लेकर लियो को साथ लिये जब स्कूल जा रहा था तो हमें लगा उदय ने एक सच्चे मित्र की तरह एक परिवार को टूटकर बिखरने से पहले कितनी आत्मीयता से संवार लिया है.

✍️ क्वार्टर न०- ८/३, ब्लॉक -D-६,

न्यू गवर्नमेंट कॉलोनी, एम. आर. सी.,

उपडाकघर, भुवनेश्वर-७५१०१७ (ओड़िशा)

मो. - ९४३८६२१५१०.

## भारतीय सिनेमा की एक...

... पृष्ठ ४४ का शेष

बढ़ाती रहती हूँ. मेरे लिए सिनेमा बहुत बड़ा मीडिया है, सोसायटी का प्रतिबिंब. बदलाव की ज़रूरत है. आज कल गलत मैसेज जा रहे हैं. मेरे लिए ज़रूरी है ऐसी कहानी लिखूँ जिससे जीवन में बदलाव आये. 'ग्लोबल सिनेमा'

## लघुकथा

### क्रीमत

✍️ अरविंद कुमार मुकुल

वमुहा गांव में एक गिरोह के आक्रमणकारियों ने सितवा को नंगा कर सारे गांव में घुमाया.

इन अत्याचारियों के चले जाने पर थाने के दारोगा, शहर के एस. पी. और डी. एम. घटनास्थल पर पहुंचे.

खानापूरी समाप्त करने के बाद जिलाधिकारी ने सितवा को १०,००० रुपये दिये.

सितवा कभी १०,००० रुपयों को देखती और कभी गांव की चंपाबाई के विषय में सोचती, उसमें और चंपाबाई में क्या अंतर रह गया. एक को नंगा होने की क्रीमत कुछ लोग देते हैं और एक के नंगा होने पर उसकी क्रीमत सरकार भरती है.

✍️ एल. एफ. २७, श्री कृष्णपुरी,

पटना - ८००००१.

मो. : ९९३१९१८५७८.

बनाना चाहती हूँ.'

**आजकल का जीवन, फ़िल्में सब पाश्चातीय रंग में रंगता जा रहा है?**

'जी, अगर पृष्ठभूमि पश्चिमी हो तो बात समझ में आती है. इसी तरह के सम्मिश्रण से मनुष्य बना है. मैं भारतीय परंपरा को बढ़ाना चाहती हूँ. हमारी भारतीय संस्कृति बहुत सशक्त है. मैंने, सब पढ़ा है. भारतीय संस्कृति को ग्लोबल बनाना है. अच्छी कहानी से लोगों के घाव भर सकते हैं. वैसे मैं आजकल अपनी लिखी एक कहानी पर फ़िल्म का निर्देशन कर रही हूँ, जिसे संजय लीला बन्साली प्रोड्यूस करेंगे. अभी इसके बारे में ज्यादा नहीं बता सकती.'

मैं ज़ोर से हंस दी और बोली — अनुराधा जी यह तो वही बात हुई —

'बात निकली तो दूर तलक जायेगी! अनुराधा शेर की पंक्ति सुन, इतनी ज़ोर से हंसी मानो चारों दिशाओं में किसी मासूम बच्चे की खिलखिलाहट सुनाई दे रही हो.

✍️ पो. बॉक्स-१९७४३, जयराज नगर,

बोरिवली (प.), मुंबई-४०००९२

मो. : ९२२३२०६३५६